

अष्टावक्र जनक संवाद

अथ अष्टावक्र और
राजा जनक के बीच
ज्ञान मुक्ति वैराग्य
धर्म शांति बोध
और आत्मा आदि पर
वार्ता

प्रस्तुत करती
विनाद कट

91+ 8860410233

kad.vinod@gmail.com

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक महाभारत ग्रंथ के लेखक व्यास जी द्वारा संस्कृत में लिखी अष्टावक्र संहिता का हिन्दी अनुवाद है।

इसमें प्रसिद्ध अष्टावक्र राजा जनक द्वारा ज्ञान मुक्ति वैश्वय आदि विषयों पर पूछे प्रश्नों का उत्तर देते हैं और अष्टावक्र के उत्तर सुनकर राजा जनक की जीवन और अपने प्रति सारी शंकाएँ दूरिधायक स्वप्न हो जाती हैं।

आशा है यह पुस्तक आपके जीवन की उलझनों, शंकाओं, दूरिधायकों को भी दूर करने में सहायक होगी।

विनोद कद

विषय सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ
1	मे ^{मे} कोन ^{हूँ}	5-24
2	मे ^{मे} हेरान ^{हूँ}	25-49
3	साधक की परीक्षा	50-63
4	ज्ञानी के गुण	64-69
5	मुक्ति का माग	70-73
6	न पकड़ा न छोड़ा	74-77
7	मे ^{मे} सागर ^{जैसा} हूँ	78-82
8	बंधन और मुक्ति	83-86
9	संसार का रूप	87-94
10	इच्छा ही बंधन है	95-102
11	शान्ति का माग	103-110
12	अपन अंदर ठहरना	111-118
13	सुख अपन अंदर है	119-125

विषय सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ
14	मैं बौद्ध हूँ	126-129
15	मैं शरीर / मन नहीं हूँ	130-149
16	मैं कर्त्ता नहीं हूँ	150-160
17	मूक्त व्यक्ति के गुण	161-180
18	मैं भोक्ता नहीं हूँ	181-280
19	मैं छहर गया हूँ	281-288
20	मैं सदा हूँ	289-302

- 1) हर श्लोक की संख्या हर पृष्ठ के नीचे अंत में लिखी हुई है।
- 2) इस पुस्तक में कुल 298 श्लोक हैं।
- 3) किसी पृष्ठ पर जाने के लिए इस PDF फाइल की CTRL+SHIFT+N कमांड का प्रयोग करें।

जनक उवाच

कथम ज्ञानम अवाप्नोति
 कथम मुक्तिं भविष्यति
 वैराग्यं च कथम प्राप्तम्
 सततं ब्रूही मम प्रभो ॥

जनक पूछते हैं

हे प्रभु ज्ञान कैसे मिलता है
 मेरी मुक्ति कैसे होगी और
 वैराग्य (राग से दुरुक्कार) को
 कैसे प्राप्त होते हैं ।

कृपा करके मेरे सब मुद्दे बताइये ॥

1.2

अष्टावक्र उवाच

मुक्तिम इच्छसि चेत तात.

विषयान् विषयवत् त्यज ।

क्षमा आज्ञा दया संतोष सत्यम्

पीयूषवत् भज ॥

अष्टावक्र वक्षते हे

प्रिय यदि तुम्हें मुक्ति की

इच्छा है तो संसार में फल

हरे अनेक विषयों विचारों को

विष (जहर) की तरह छोड़ दो।

और क्षमा सादगी दया संतोष

सत्य को अमृत की तरह सेवन

अर्थात् प्रयोग करो ॥

1.3

न पृथ्वी न जलम न अग्नि
न वायु द्यौ न भवान् ।
स्वाम साक्षीणाम् आत्मानम्
चिद-रूपम् विद्धि मुक्तये ॥

तुम न पृथ्वी हो न जल न आग
न हवा न आकाश हो और न
ही इन सबसे बनी कोई वस्तु हो ।
अपनी मुक्ति के लिए अपने को
इन सबका साक्षी चैतन्य (होश)
रूप जान ॥

1.4

यदि देहम पृथक् कृत्य
चिति विस्मय तिष्ठसि

अधुना ख

सुखी शान्तः बन्ध मुक्तो
भविष्यसि ॥

यदि तुम अपने शरीर (देह)

को अलग जानकर मानकर

अपने अंदर आराम से

बैठ जाओ तो तुम अभी

ही सुखी शान्त और

बन्धन मुक्त हो जाओगे ॥

1.5
 न त्वम विप्र आदिको वर्णो
 न आत्मा न अक्ष गोचरः ।
 असंगो असि निर आकारो
 विश्व साक्षी सुरवी भव ॥

न तुम ब्राह्मण आदि किसी
 वर्ण जाति वाले हो और
 न तुम ग्रहस्थ आदि आत्मा हो
 न ही तुम आँख से
 दिखाई देने वाले हो ।
 तुम संग रहते हो
 तुम्हारा कोई आकार नहीं
 तुम संसार के साक्षी हो
 इसलिए सुरवी हो जाओ ॥

1.6

धम अधम^८ सुखम^८ दुखम^८
मातसानि न ते विभो ।
न कत्ता^८ असि
न भौत्ता^८ असि
मुत्त^८ खव असि
सर्वदा ॥

हे व्यापक धम - अधम और
सुख दुख आदि सब मन से
सम्बन्धित है तुम्हारे लिये नहीं है ।
तुम न कत्ता (कम करने वाला) हो
न तुम भौत्ता (फल भोगने वाला) हो
तुम सदा स ही मुत्त हो ॥

शंका दृष्टा असि सर्वस्य
 मुक्त प्राप्ता असि सर्वदा ।
 अयम् एव ही ते बन्धुः
 दृष्टारम् पश्यसि इतरम् ॥

तुम एक ही सब कुछ देखने वाले हो
 और सदा पहले से ही मुक्त हो ।
 तुम्हारा बन्धन यही है कि तुम
 देखने वाले (यानि आत्मा परमात्मा)
 को कहीं और इधर उधर टूटते
 हो देखते हो । अर्थात् तुम जिस
 आत्मा परमात्मा आदि को बाहर
 कहीं देखते टूटते हो वह तुम ही हो ।

1.8

अहम कर्ता

इति अहंमान महा कृष्णा

अहि दंशिता ।

न अहम कर्ता

इति विश्वास अमृतम पीत्वा

सुरवी भव ॥

तुम "मैं कर्ता हूँ"

इस अत्यंत काल साप

रूपी अहंकार से इसे छूरे हो ।

"मैं कर्ता नहीं हूँ"

इस विश्वास रूपी अमृत

को पीकर सुरवी हो ॥

एक विशुद्ध बोधो अहम्
इति निश्चय वहिन्ना ।

प्रसवलय अज्ञान गहनम्
वीत शोकः सुखी भव ॥

" मैं एक हूँ परम शुद्ध हूँ
बोध (होश) हूँ " तुम
इस निश्चय (इस सच्चाई अहसास)
रूपी अग्नि से अपने अंदर
के घेत जंगल रूपी अज्ञान
को जलाकर शोक रहित और
सुखी हो जाओ ॥

1.10

यत्र विश्वम् इदम् भाति
कल्पितम् रज्जु सर्पवत् ।

आनन्द परम-आनन्द

सः बौध्य त्वम्

सुखम् चर ॥

जिसमें यह संसार

रस्सी में सांप जैसा

कल्पित लगता है ।

वह आनन्द परम-आनन्द

बौध्य (अहसास)

तुम ही हो ।

इसलिए सुख से रहो ॥

मुक्त अभिमानी मुहो हि
 बट्टा बट्ट - अभिमानी अपि ।
 किवदन्ती इह सत्य इयम
 सा मतिः सा गति भवेत् ॥

जो अपने को मुक्त मानता है
 वह मुक्त ही है
 जो खुद को बंधा समझता है
 वह बंधा ही होता है ।
 यह कहावत सच ही है कि
 जैसी जिसकी मति (सोच) हो
 वैसी ही उसकी गति (अंत) होता है ॥

1.12

आत्मा साक्षी विभुः पूर्ण
रको मुक्त-चित्त अक्रियः ।
असंगो निस्पृह शान्तो
भ्रमात् संसारवन इव ॥

आत्मा साक्षी है व्यापक है
पूर्ण है रक है चित्त से
मुक्त है अक्रिय (अकर्ता) है ।
यह असंग (किसी से बंधी नहीं) है
इच्छा रहित और शान्त है ।
यह हमें केवल भ्रम वहम
अज्ञानता के कारण संसार
के लोभों जैसी लगती है ॥

कूटस्थं बोध्यं अद्वैतम्

आत्मानम् परिभावय ।

आभासो अहम्

भ्रमम् मुक्तत्वा

भावम् बाह्यम् अथ अन्तरम् ॥

अपने अंदर और बाहर के भावों

विचारों कल्पनाओं तथा अपने

अहंकार रूपी आभास के भ्रम

(वहम् अज्ञानता) से मुक्त होकर

कूटस्थ (सदा स्थिर) बोध्य (होशमंद)

तथा अद्वैत (यानि एक) आत्मा

का भाव कर विचार कर ॥

1.14

देह अभिमान पाशोन
चिरम बढ़े असि पुत्रक ।
बौधो अहम
ज्ञान खड्ग
तत् निष्कृष्य
सुरवी भव ॥

बैठा तुम इस शरीर के
अभिमान रुपी पाश (बन्धन)
से बहुत समय से बंधे हो ।
" मैं बौध हूँ " इस तलवार
रुपी ज्ञान (समझ) से उस
पाश को काटकर सुरवी हो ॥

निसंगो निष-क्रियो असि
 त्वम स्वप्रकाशो निरंजनः ।
 अयम स्व ही ते बन्धः
 समाधिम् अनुलिख्यसि ॥

तुम निसंग (संग-रहित अकेल) हो
 क्रिया-रहित (अकर्ता) हो
 तुम अपने आप से ही रोशन
 हो प्रकाशित हो और साफ
 शुद्ध वेदांग निर्दोष हो ।
 तुम्हारा बन्धन इतना ही है कि
 तुम यह सब पाने के लिए
 समाधि ध्यान आदि के लिए
 बैठते हो कोशिश करते हो ॥

त्वया व्याप्तम इदम विश्वम्
त्वयि प्रौढम यथायतः ।

शुद्धं ब्रुद्धं स्वरूपं त्वम्
मां मामः क्षुद्धं चितताम् ॥

यह संसार तुमसे ही व्याप्त है
यानि तुम हो इसलिए यह
संसार बिखाई पड़ता है।
इसकी वास्तविकता सचचाई
तुम में ही पिरोई हुई है ।

तुम्हारा स्वरूप शुद्ध साफ
और बौद्ध रूप (होशमंद) है
इसलिए तुम मन की लुद्ध
छोटी भाव इच्छाओं पर न जाओ ॥

निर-अपेक्षा निर-विकारो

निर-भरः शीतल-आशयः ।

अगाध बुद्धि अक्षुब्धो

~~अक्षुब्धो~~ भव चिन्मात्र-वासनः ॥

तुम अपेक्षा रहित हो

विकार (उलझन आदि) रहित हो

अपने आप पर निर्भर (आधारित) हो

शांति और शीतलता के स्थान हो

अनंत बुद्धि और क्रोध रहित हो ।

इसलिए अपने असली रूप

चैतन्य (चैतन्यता होश बोध)

में रहने वाले हो अर्थात्

सदा होश में रहे ॥

सअकारम अनृतम विदि
निर-आकारम तु निश्चलम् ।
यतत तत्त्व उपदेशेन
न पुन भव सम्भवः ॥

जिस वस्तु का कोई
 आकार है उसे तुम
 अतित्य परिवर्तनशील जानो ।
 जैसे क्षारीय पदार्थ आदि
 जिसका कोई आकार न हो
 उसे तुम स्थायी जानो
 जैसे आत्मा हमारा बोध ।
 इतना जान लेने से ही
 संसार में फिर मोह नहीं होता ॥

यथा श्व आदिश मध्यस्थे
 रूपे अन्तः परितः अस्तु सः ।
 तथा श्व अस्मिन् शरीरे
 अन्तः परितः परमेश्वरः ॥

जिस तरह दर्पण (आईना) में
 दिखाई देने वाला प्रतिबिम्ब (परछाई)
 उसके बाहर भी और अंदर भी
 होती है ।
 उसी तरह हमारे शरीर के
 अंदर भी और बाहर भी
 वो परम-ईश्वर (परमात्मा)
 रहता है ॥

1.20

एकम सर्व गतम व्योम
बहिर अन्तर यथा द्यौः ।
नित्यम निरन्तर ब्रह्म
सर्व भूत भोगे तथा ॥

जैसे छड़े के अन्दर और
बाहर एक ही आकाश (शुद्धता)
सब जगह मौजूद है ।
वैसे ही सभी प्राणियों में
नित्य (सदा रहने वाला) और
निरन्तर (लगातार) रहने वाला
परम-आत्मा (ब्रह्म) मौजूद है ॥

प्रथम अध्याय समाप्त

दूसरा अध्याय

२.१

जनक उवाच

अहो निरंजनः शान्तो बोधो अहम्
प्रकृते परः ।

एतावन्तम् अहम् कालम् मोहत
एव विदुः पितः ॥

जनक हिरान होकर कहते हैं
आश्चर्य है कि मैं निर्दोष हूँ
शान्त हूँ बोध (होश हूँ) और
प्रकृति के नियमों से भी परे हूँ ।
और इतने लंबे समय से
केवल मोह ममता द्वारा
ही ठगा गया हूँ ॥

2.2

यथा प्रकाशायति रूपा
देहम रनम तथा जगत् ।
अतो मम जगत् सर्वम्
अथवा न च किंचन ॥

जैसे मैं एक ही इस
अपनी देह शरीर को
प्रकाशित रोशन करता हूँ
वैसे ही इस संसार को
भी मैं ही रोशन करता हूँ ।
इसलिए यह सारा संसार
मेरा ही है या कुछ भी
मेरा नहीं है ॥

सशरीरम अहं

विश्वम परित्यज्य

मया अधुना

कुतश्चित् कौशलात् ख

परमात्मा विलोभ्यते ॥

हेरानी की बात है कि

शरीर सहित इस संसार

को अपने से त्याग कर हटा कर

(यानि अपने से अलग जान कर)

मुझे अभी ही परम-आत्मा

कैसी कुशलता (कैसे तरीके से)

से दिरवाई पड़ रहा है ॥

2.4

यथा न तोयतो भिन्ना
तरंगाः फेन बुद्बुदाः ।
आत्मनो न तथा भिन्नम्
विश्वम् आत्म विनिर्गतम् ॥

जैसे तरंगों झाग बुलबुल
पानी से अलग नहीं है ।
वैसे ही आत्मा से
उत्पन्न और उस पर आधारित
यह संसार आत्मा से
अलग नहीं है ॥

तन्तु मात्रा भवेत् ख
 पतो यद्वत् विचारतः ।

आत्मा तन्मात्रम् ख
 इक्ष्म तद्वत् विश्वम् विचारितम् ॥

जैसे थोड़ा सोचने विचारने
 पर हर कपड़ा केवल धागों
 का ही जोड़ नजर आता है ।

वैसे ही गहन विचार करने
 पर यह संसार भी केवल
 आत्मा (अज्ञा का दूसरा नाम)
 का ही फैलाव नजर आता है ॥

२.६

यथा ख ईक्षु रसं नल्लुप्तम्
तेन व्याप्ता ख शकरा ।
तथा विश्वम मयि नल्लुप्तम्
मया व्याप्तम् निरन्तरम् ॥

जैसे गन्त के रस में
प्रतीत होत वाली शक्कर
(मिठास) उसी रस के
कारण व्याप्त है ।
उसी तरह मुझमें प्रतीत
महसूस होत वाला संसार
मेरे ही कारण अस्तित्व
में है ॥ याति मेरे लिए
जब तक मैं हूँ तब तक ही संसार है ॥

२.७

आत्मा अज्ञानात् जगत भाति
 आत्म ज्ञानात् न भासते ।
 रज्ज्व अज्ञानात् अहि भाति
 तत् ज्ञानात् भासते न हि ॥

जैसे अंधरे में अगर न
 पता हो तो रस्सी भी
 साँप ही लगती है ।
 वैसे ही यह संसार भी
 हमें तब तक सही यां
 ठीक लगता है जब तक
 हम अपनी आत्मा की
 पहचान यां बोध न
 हो जाये ॥

२.८

प्रकाशा मे निजम रूपम
न अतिरिक्तो अस्मि

अहम ततः ।

यदा प्रकाशते विश्वम

तदा अहम भास एव ही ॥

प्रकाश मेरा अपना रूप है

अर्थात् मे प्रकाश ही हूँ ।

उससे अलग नहीं हूँ ।

जब यह संसार प्रकाशित

दिखता है तो वो मेरे

ही प्रकाश से दिखता है ॥

अहो विकल्पितम् विश्वम्

अज्ञानात् तथि भासते ।

रूप्यम् शुक्लौ

फणी रज्जौ

वारि सूर्यकैरे यथा ॥

हेरानी की बात है कि

यह संसार (जो कल्पनाओं विचारों

से ज्यादा नहीं) मुझमें अज्ञान

के कारण ऐसे नजर आता है

जैसे निर्मूल्य सीपी में कीमती चांदी

निर्भय रस्सी में डरावना साँप और

सूरवी रेत में सूर्य की किरणों

के कारण दिखने वाला पानी ॥

2.10

मत्तो विनिर्गतम विश्वम्
मायि श्व लयम् शक्यति ।
मृदि कुम्भौ
जले वीचिः
कनके कटकम् यथा ॥

मुखसे उत्पन्न या मुखपर
आधारित यह संसार मुख
में यानि मेरे में मेरे
साथ ही विलय हुल जायेगा
जैसे मिट्टी का चड़ा मिट्टी में
सागर की लहरें सागर में और
सान के गहन सान में ही
मिल जाते हैं ॥

अहा अहम नमो महिम
 विनाशी यस्य न अस्ति मे ।
 ब्रह्म आदि तन्त्र पर्यन्तम
 जगत् नाशो अपि तिष्ठतः ॥

ॐ
 मे हरा न हूँ मेरे अंदर बैठे
 मुझको (जिसको) विनाश नहीं है)
 नमस्कार है ।

क्योंकि ब्रह्म (भगवान् देहधारी)
 से लेकर पत्त तक सारे संसार
 का नाश होने पर भी वह
 मेरे भीतर स्थित है बैठा है ॥

2.12

अहं अहम् तमो मह्यम्
एको अहम् देवान् अपि ।
क्वचित् न गन्ता न आगन्ता
व्याप्य विश्वम् अवस्थितः ॥

मैं हिरान हूँ
मुझ नमस्कार हूँ
मैं शरीर वाला हूँ हूँ भी
एक हूँ अद्वैत हूँ ।
मैं न कहीं जाता हूँ
न कहीं आता हूँ
लेकिन फिर भी यह
संसार मुझ में व्याप्त है
मेरे कारण ही स्थित है ॥

अहो अहम तमो महम
 दक्षो न अस्ति इह मात्समः ।
 असंपृश्य शरीरेण येन
 विश्वमपि चिरमव्युतम ॥

मैं हराण हूँ मुझे तमस्कार है
 जो मेरे जैसा निपुण यहाँ नहीं है
 जिसने शरीर को दुखे बिना
 अनंत समय से इस संसार
 को व्यापण किया है संभाला है ।
 अर्थात् मेरे होने से ही
 यह संसार अस्तित्व में है ॥

2.14

अहो अहम् तमो मह्यम्
यस्य मे त अस्ति किंचन ।
अथवा यस्य मे सर्वम्
यत वाक् मनस गोचरम् ॥

मे हरात हूँ मेरे भीतर
ठहरे हुँ मुझको नमस्कार
हैं जो जिसके भीतर कुछ
भी नहीं है या वो सब
कुछ है जो मन और
वाणी के अधिकार परिधि
में आता है ॥

ज्ञानम् ज्ञेयम् तथा ज्ञाता
 जितयम् न अस्ति वास्तवम् ।
 अज्ञानात् भाति यत्र इदम्
 सो अहम् अस्मि निरंजनः ॥
 अस्मि

ज्ञान/ज्ञा ज्ञानत वाला (ज्ञाता)
 जिसको जाना गया है (ज्ञेयम्)
 और जो जाना गया है (ज्ञानम्)
 यह तीनों ही वास्तव में नहीं हैं ।
 बल्कि जिसमें या जिसको यह
 तीनों भासे (महसूस होत लगते हैं)
 है वो साफ शुद्ध निर्दोष
 में ही है ॥

द्वैत मूलम अहो दुरवम
 न अन्यत तस्य अस्ति भेषजम् ।
 द्रव्यम रतत मृषा सर्वम
 रसो अहम पिबे रसो अमलः ॥

आश्चर्य है कि दुरव का
 असली कारण द्वैत है
 यानि अपने को संसार
 सृष्टि से अलग समझना ।
 इस दुरव का कोई इलाज नहीं ।
 यहाँ हर दिशाई देने वाली चीज
 अस्थायी है सपने जैसी है ।
 रस में ही निर-मैल चेतना
 रूप होश रूप रस हैं ॥

बोध मात्रो अहम्

अज्ञानात्

उपाधिः कल्पितो मया ।

स्वम् विमृश्यतो नित्यम्

निर्विकल्प स्थिति मम् ॥

मैं केवल बोध होश ही हूँ

अज्ञान के कारण मैंने अपन

कई रूप उपाधियाँ मान रखी हैं ।

इस तरह ऐसा बार बार देख

कर समझ कर मैं अब

निर-विकल्प (इच्छा / चुनाव रहित)

स्थिति अवस्था में ठहर गया हूँ ॥

अहो मयि स्थितम् विश्वम्
 वस्तुतो न मयि स्थितम् ।
 न मे बन्धो अस्ति
 न मोक्षो वा

भ्रान्तिः शान्ता निर आश्रया ॥

आश्चर्य है कि मुझमें नजर
 आता यह संसार वास्तव में
 मुझमें स्थित नहीं है ।

न मेरा कोई बन्धन है
 न मेरी कोई मुक्ति है ।

यह उलझन तब शांत हुई
 जब मैं अकेला बेसहारा हुआ ॥

सशरीरम इदम विशावम
न किंचित्
इति निश्चितम् ।

शुद्ध चिन्मात्र आत्मा च
तत् कस्मिन् कल्पना अधुना ॥

शरीर सहित यह संसार
कुछ भी नहीं है (स्थायी नहीं है)
यह निश्चित है पक्का है ।

यह केवल शुद्ध (दाग रहित साफ)
चेतन्य मात्र (होश भर केवल)
आत्मा ही है और इसकी
कल्पना विचार अब और
किसमें कहाँ की जा सकती है ॥

2.20

शरीर^१ स्वर्ग^२ - नरक^३
बन्ध^४ - मोक्ष^५ भय^६ तथा^७ ।
कल्पना^८ मात्र^९ स्व^{१०} ।
सत^{११} किम^{१२} मे^{१३} कार्य^{१४} मे
चिदात्मनः^{१५} ॥

यह शरीर^१ स्वर्ग^२ नरक^३
बन्धन^४ मोक्ष^५ और भय^६
सब कल्पना^८ विचार^९
मात्र^{१०} ही है^{११} ।

इन सबसे मुझ^१ चेतन्य^२
बोध^३ रूप आत्मा^४ का
क्या काम^५ है अर्थात्^६ मे^७
इन सबसे अलग^८ हूँ^९ ॥

अहो जन समूह अपि
 न क्षैतम पश्यतो मम ।
 अरण्यम ~~इव~~ इव संवृतम्
 वं रतिम करवाणि अहम् ॥

हरानी की बात है कि
 लोगों की भीड़ में भी
 अब मुझे कोई दूसरा नहीं दिखता ।
 सब जंगल जैसे एक से
 लगते हैं ।
 तो अब मैं इनमें से किसका
 कैसे मोह राग करूँ ॥

2.22

न अहम देहा
न मे देहा
जीवा न अहम
अहम ही चित् ।
अयम स्व ही
मे बन्ध आसीत्
या जीविते स्पृहा ॥

न मे यह शरीर हूँ
न यह शरीर मेरा हूँ
न मे जीव (मनुष्य) हूँ
मे केवल चेतना (होश) हूँ ॥
मेरा बंधन यही था कि
मुझे जीवित रहने की इच्छा थी ॥

^२अहा भुवन-कल्लोल
^२विचित्र ^२झाक ^२सम-उच्यम् ।
 मयि अनंत महान् ^२बोधौ
^२चित्तवात ^२सम-उद्यते ॥

हेरानी है कि मुझ अनंत आत्मा रूपी
 महासागर में मन चित रूपी
 हवा के चलने से संसार रूपी
 विचित्र लहरें (दुख सुख आदि)
 उठती रहती है ।
 लेकिन यह सब (लहरों और सागर
 की तरह) मुझसे या मैं इनसे
 अलग नहीं हूँ ॥

2.24

मयि अनंत महाभोधा
चित्वात् प्रशाम्यति ।
अभावात् जीव वणिजो
जगत् पीतो वितस्वरः ॥

मुझ अनंत महासागर में
चित्त मन रूपी हवा के
रुकने पर इस जीव
(शरीर मन) रूपी व्यापारी
की संसार रूपी नौका (नाव)
अभावा (समय आन पर)
नाश हो जाती है ॥

मायि अतन्त महाभोद्यो
 आश्चर्यम जीव वीचयः ।
 उद्यन्ति द्यन्ति खेलन्ति
 प्रविशन्ति स्वभावतः ॥

आश्चर्य है कि मुझ अंत
 महासागर में जीवन रुपी
 अनेक लहरें अपने आप
 अपने अपने स्वभाव से
 उठती हैं और करती
 हैं खेलती हैं और अंत
 में वापिस लौट जाती हैं ॥

दूसरा अध्याय समाप्त

3.1

तीसरा अध्याय

अष्टावक्र उवाच

अविनाशिनम् आत्मानम् एकम्
विज्ञाय तत्त्वतः ।

तव आत्मज्ञस्य धीरस्य
कथम् अर्थ अर्जुने रतिः ॥

अष्टावक्र जनक की परीक्षा के
लिए पूछते हैं :

एक (अद्वैत) अविनाशी आत्मा
को जान लेने पर भी
तुझ आत्मज्ञानी धीर (धैरवान्)
को धन कमाने में अभी
भी इतनी रूचि इच्छा कैसे है ॥

आत्मा अज्ञानात् अहो
 प्रीतिः विषय भ्रम गौचरे ।
 शुक्ते अज्ञाने
 लोभो यथा
 रजत विभ्रमे ॥

आश्चर्य है कि आत्मा के
 अज्ञान (जानकारी न होने) से
 विषय वस्तुओं में भ्रम वहम
 के कारण प्रीति रूचि होती है ।
 जैसे सीपी के अज्ञान से
 भ्रम के कारण उसमें याद
 होने का लोभ लालसा होती है ॥

3.3

विश्वम स्फुरति यत्र इक्ष्म
तरगा इव सागरे ।
सो अहम अस्मि
इति विज्ञाय
किम कीन इव धावसि ॥

जिस आत्मा में यह
संसार सागर में लहरों
की तरह उठता है ।
वह मैं ही हूँ
यह जान लेने पर भी
तु क्यों कीन गरीब
की तरह संसार में
ढोड़ रहा है ॥

श्रुत्वा अपि शुद्ध चैतन्यम्
 आत्मानम् अति सुन्दरम् ।
 उपस्थे अत्यंत संसक्तो
 मालिन्यम् अधिगच्छति ॥

अति सुंदर शुद्ध चैतन्य
 रूप आत्मा को सुनकर
 जानकर भी अपने आसपास
 की विषय वस्तुओं में बहुत
 रूचि रखने वाला व्यक्ति
 मालिनता मूर्खता को ही
 प्राप्त होता है ॥

3.5

सर्व भूतेषु च आत्मानम्
सर्व भूतानि च आत्मानि ।

मुनः जानतः

आश्चर्यम्

ममत्त्वम् अनुवर्तते ॥

आश्चर्य है कि

सब प्राणियों में आत्मा को
और आत्मा में सब प्राणियों को
जान लेने पर भी मुनि को
मम-त्त्वम् (मेरा तेरा) का
वर्तीव व्यवहार हो रहा है ॥

आस्थितः परम अद्वैतम्
 मोक्ष अथै अपि व्यवस्थितः ।
 आश्चर्यम् काम वशात्
 विफलः कैलि शिक्षया ॥

हेरानी की बात है कि
 परम अद्वैत (मेरे तेरे का भेद मिटना)
 में आकर और मोक्ष के लिए भी
 तैयार हो जान पर तुम
 काम वासना के अधीन होकर
 काम क्रीड़ा करने में व्याकुल
 परवान हो रहे हो ॥

3.7

उद्भूतम ज्ञान दुर-मित्रम
अवधाय अति दुर्बलः ।

आश्चर्यम्

कामम् अकाक्षितम्

कालम् अन्तम् अनु-आश्रितः ॥

हेरानी की बात है कि
ज्ञान के शत्रु काम वासना
के उठने पर उसे करके
बहुत कमजोर और अपने
अंत समय (मृत्यु) के
करीब होकर भी तुम
काम की ही इच्छा कर
रहे हो ॥

इह अमुत विरक्तस्य
नित्य अनित्य विवेकिनः ।

आश्चर्यम मोक्षकामस्य
मोक्षात् एव विभीषिका ॥

आश्चर्य है कि

जो इस लोक और परलोक
से विरक्त (न चाहने वाला) है

जो नित्य और अनित्य को समझता है

जो मोक्ष मुक्ति की कामना करता है

उसे मोक्ष से ही डर लग रहा है ॥

धीरः तु भोड्यमानो अपि
 पीड्यमानो अपि सर्वदा ।
 आत्मानम् केवलम् पश्यन्
 न तुष्यति न कुप्यति ॥

धैरवान् व्यक्त तो हमेशा
 संसार की विषय वस्तुओं
 को भोगते हुए उनकी
 पीड़ा दर्द को भी सहते
 हुए केवल अपनी आत्मा
 को ही देखता है और
 उनसे न तो संतुष्ट खुश
 होता है न ही उनसे
 क्रोधित परेशान होता है ॥

चैव त्मानम शरीरम स्वम
 पश्यति अन्य शरीरवत् ।
 संस्तवे च अपि निंदायाम्
 कथम क्षुभ्यते महाशयः ॥

जो व्यक्ति कोशिशों में
 काम में लगे अपने शरीर को भी
 दूसरे के शरीर जैसा देखता है ।
 वह बड़े दिल वाला (महाशय)
 व्यक्ति अपनी प्रशंसा में
 और निंदा बुराई में भी
 कैसे क्रोधित परेशान हो
 सकता है ॥

3.11

माया मात्रम इदम विश्वम
पश्यन् विगत कौतुकः ।
अपि सन्नि-हित मृत्यो
कथम तस्यति धीरर्थाः ॥

जिसके सभी वहम उत्सुकताएं
आदि स्वप्न हो गये (विगत कौतुकः)
जो संसार को केवल सपने
माया (जो लगती है लेकिन है नहीं)
जैसे देखता है ।

वह धैर्यवान व्यक्ति मृत्यु के
करीब पास आने पर कैसे
डर धक्का सकता है ॥

निःस्पृहम् मानसम् यस्य
नैराश्रये अपि महात्मनः ।

तस्य आत्मज्ञानं तृप्तस्य
तुलना केन जायते ॥

जिस महान आत्मा का
मन मोक्ष मुक्ति में भी
इच्छा नहीं रखता है ।

उस आत्मज्ञान से तृप्त
परिपूर्ण भरे हुए व्यक्ति
की तुलना किससे की
जा सकती है ॥

3.13

स्वभावात् स्व जानानौ
कश्यम शतं न किंचन ।

इदम ग्राहिम इदम व्याज्यम
स किम पश्याति धीरधीः ॥

जो यह जान लेता है कि
यहाँ ~~जो~~ जो कुछ भी दिखाई
दे रहा है वह वास्तव में
स्वभाव से कुछ भी नहीं है ।
वह धीरे धीरे वाला यह कैसे
देखता है देख सकता है कि
यहाँ क्या पकड़ने से भालने
योग्य है और क्या छोड़ने योग्य ॥

अन्तः त्यक्त कथा यस्य
 निर-दण्डस्य निर-आश्रयः ।
 यद्वच्छया आगतो भोगो
 न दुःखाय न तुष्टये ॥

जिसकी अंदर की मूल निकल गई
 जिसकी दुर्विचारें मिट गईं
 जो किसी पर आश्रित नहीं ।
 उसके पास भाग्य (समय) इच्छा
 से आई भोग की वस्तु आदि
 न उसे दुःख देने और न
 ही सुख देने के लिए है ॥

तीसरा अध्याय समाप्त

4.

चौथा अध्याय

जनक उवाच

हन्त आत्मज्ञस्य धीरस्य

खेलते भोगलीलया ।

न हि संसार वाहीकैः मूढैः

सह समानता ॥

सच ही कहते हैं कि

संसार की भोग लीला

से खेलते हुए आत्मज्ञानी

धैरवान की संसार को

ढाँत चलाने वाले मूर्खों

के साथ कोई समानता

बराबरी नहीं है ॥

यत् पदम् प्रेप्तवो दीनाः

शक्र-आद्या सर्व देवताः ।

अहो

तत् स्थितो योगी

न हर्षम उपगच्छति ॥

जिस पद को प्राप्त करने

के लिए इन्द्र आदि सभी

देवता कीन बेचैन होते हैं ।

हेरानी की बात है कि उस

पर स्थित ठहरा हुआ योगी

खुशी के पीछे नहीं जाता ॥

अर्थात् उसके पीछे भागता नहीं ॥

4.3

तत् तस्य पुण्य-पापाभ्याम्
स्पृशो हि अन्तः न जायते ।
न हि आकाशस्य
धूमन द्रव्यमाना
अपि संगतिः ॥

तत्त्व (परम अंतिम ज्ञान) को
जानने वाले को पाप और
पुण्य अंदर से नहीं छूते ।
जैसे आकाश का
तार के साथ
दिलवाई देते हुए भी
कोई संबंध नहीं होता ॥

आत्मा एव इदम जगत् सर्वम्
 ज्ञातम् येन महात्मना ।
 यद्-इच्छया वर्तमानम् तम्
 निषेद्धुम् क्षमेत कः ॥

जिस महान आत्मा ने यह
 जान लिया कि यह सारा
 संसार केवल आत्मा ही है ।
 उस परम की इच्छा से चलने
 वाले को रोकने में
 कौन सक्षम स्मर्थ है ॥

4.5

आश्रयः तत्र पयन्ते
भूत ग्रामे चतुर्विधे ।
विज्ञस्य ख ह सामर्थ्यम
इच्छा अनिच्छा विवर्जने ॥

ब्रह्म (निर्माता) से लेकर
चींटी तक चार प्रकार
के जीवों प्राणियों (मनुष्य
पशु, पक्षी और कीड़े-मकोड़े)
के समूह में केवल आत्म
ज्ञानी की ही समर्थता है
कि वह अपनी इच्छा या
अनिच्छा को छोड़ सके ॥

आत्मानम अक्षयम कश्चित
जानाति जगत् इश्वरम् ।
यत् वेत्ति तत् सः कुरुते
न भयम् तस्य कुत्रापि ॥

^{१८}कोइ ^{१८}कोइ ही आत्मा ^{३१}और
परमात्मा ^१को एक ^{३१}अक्षत जान
पाता ^१है समस्त पाता ^१है ।
वह ^{३१}जो जानता ^{३१}है वही
करता ^{३१}है ।
उसे किसी का डर नहीं ॥

^{३१}पौथो अध्याय समाप्त

पाँचवाँ अध्याय

5.1

अष्टावक्र उवाच

न ते संगो अस्ति केन अपि
किम शुद्धः व्यनतुम इच्छसि ।
संघात विलयम कुर्वन्
स्वम स्व लयम ब्रज ॥

अष्टावक्र कहते हैं

तुम्हारा किसी के साथ भी
कोई जोड़ नहीं है । तुम
शुद्ध हो । तो भी तुम
किस को और क्या छोड़ना
चाहना चाहते हो ? अपने
को संहित के साथ एक जानकर
ऐसे ही मुक्त हो जाओ ॥

उदेति भवता विश्वम्
 वारिधेः इव बुद्बुदः ।
 इति शब्दा एकम् आत्मात्म
 स्वम् एव लयम् ब्रज ॥

जैसे समुद्र के पानी से
 लहर बलबल उठते हैं
 ऐसे ही यह संसार
 तुमसे तुम्हारे भीतर से उठता है ।
 इस तरह सागर रुपी अपनी
 आत्मा को एक जानकर
 तुम भी इसके साथ मिल कर
 एक हो जाओ ॥

5.3

प्रत्यक्षम अपि अवस्तुतवात्

विश्वम न अस्ति ।

अमले त्वयि

रञ्जु सपि इव व्यक्तम

इवम इव लयम व्रज ॥

सामने दिखाइ देन पर

भ्री यह संसार वास्तव

मे तही है ।

यह तुझ शुद्ध निर-मेल में

रखी मैं साप दिखन जैसा है ।

इसलिये ऐसा जानकर तुम

अपन साथ एक हो जाओ ॥

सम दुःख सुखः पूण

आशा निराश्रयोः समः ।

सम जीवित मृत्युः सन्न

श्वभ श्व लयम ब्रज ॥

तुम पूण रूप

सुख दुःख में समान

आशा निराशा में एक जैसे ।

जीवन में आर मृत्यु पास आन

पर भी एक जैसे होकर

ऐसे ही अपने आप में

लीन हो जाओ ॥

पाँचवाँ अध्याय समाप्त

आकाशवत् अनन्तम् अहम्
 धृत्वत् प्राकृतम् जगत् ।
 इति ज्ञानम् तथा शतस्य
 न व्यागो न ग्रहा लयः ॥

मैं आकाश की तरह अनन्त हूँ
 संसार धड़ की तरह प्रकृति
 कुहरत से बना है ।
 यही ज्ञान है और इसका
 न छोड़ा जा सकता है
 न पकड़ा जा सकता है और
 न ही यह लीन समाप्त हो सकता है

^२महादधिः इव अहम्
 स प्रपंचो वीचि सन्नितमः ।
 इति ज्ञानम तथा शतस्थ
 न त्यागो न ग्रहे लयः ॥

^{२१}मे महान सागर की तरह हूँ
 यह संसार उसमें से उठने वाली
 लहरों जैसा है ।
 यही ज्ञान है और इसका
 (संसार का) न त्याग हो
 सकता है न इसका पकड़ा
 या संभाला जा सकता है
 और न ही इसका कोई अंत है ॥

6.3

अहम सः श्रुति संकाशो
रूप्यवत् विश्व कल्पना ।
इति ज्ञानम तथा सतस्य
न व्याग्रा न ग्रहा लयः ॥

मे उस सीप जैसा है
जिसमें यह संसार धोड़ी
जैसा दिखाई पड़ता है ।
यही ज्ञान है और इसका
न धोड़ा जा सकता है
न पकड़ा जा सकता है
न इसमें लीन हुआ जा सकता है ॥

अहम् वा सर्व भूतेषु
 सर्व भूतानि यथो मायि ।
 इति ज्ञानम तथा शतस्य
 न व्यागो न ग्रहो लयः ॥

मे निश्चित सभी प्राणियों में हैं
 जैसे सभी प्राणि मुझ में हैं ।
 यही ज्ञान है और इसको
 न निकाला जा सकता है
 न संभाला जा सकता है
 न इसमें लीन हुआ जा सकता है ॥

छठा अध्याय समाप्त

सातवाँ अध्याय

जनक उवाच

7.1

मयि अनन्त महान्मोघौ

विश्वपोत इतः ततः ।।

भ्रमति स्वअन्त वातेन

न मम अस्ति असहिष्णुता ॥

मुक्ष अन्त महासागर में

संसार रुपी जहाज

मन रुपी हवा से

इधर उधर चलता रहता है ।

लेकिन सागर की तरह

मुझे भी यह संसार

असहनीय नहीं है ॥

मयि अनन्त महाभोधा^{११}
 जगत वीचि: स्वभावतः ।
 उदेत^{११} वा अस्तम आयात^{११},
 न मे वृष्टि^{११}
 न च क्षतिः ॥

मुझ अनन्त महासागर में
 संसार रुपी लहरें
 स्वभाव से अपने आप ही
 उठती हैं और वापिस सागर में
 लौट जाती हैं। सागर की तरह ही
 इनसे मुझे न कोई लाभ और
 न ही कोई नुस्सान होता है ॥

7.3

मयि अनन्त महामोक्षो
विश्वम नाम विकल्पना ।
अति शान्तो निर-आकार
सतत एव अहम आस्थितः ॥

मुझ अनन्त महासागर में
संसार नाम की तरङ्ग
एक कल्पना ख्याल ही है ।
सागर की तरङ्ग में भी
अत्यन्त शान्त निर-आकार
अपने आप में स्थित हूँ ॥

न आत्मा भावेषु
 ना भावः तत्र
 अनन्त निरञ्जन ।
 इति असंज्ञा अस्पृहः शान्त
 सत एव अहम आस्थितः ॥

आत्मा भावनाओं में नहीं है
 न भावनाएँ उस अनन्त और
 शुद्ध निर्दोष आत्मा में हैं ।
 आत्मा शान्त इच्छा-रहित असंज्ञ है
 मैं इसी आत्मा में ठहर गया हूँ ॥

अहो चिन्मात्र एव अहम्
 इन्द्रजाल उपमम जगत् ।
 अतो मम कथम कुत्र
 हेय उपादेय कल्पना ॥

आश्चर्य है कि मैं केवल
 चेतना बौद्ध होना ही हूँ ।
 यह ससार मुझ पर जादू
 सपने की तरह दृष्टा हुआ है ।
 इसीलए इसमें मेरे कुछ छोड़ने
 या पकड़ने की कल्पना कहा
 और कैसे हो सकती है ॥

सातवाँ अध्याय समाप्त

तदा बन्धो यदा चित्तम
किंचित् वाञ्छति शोचति ।
किंचित् मुञ्चति गृह्णाति
किंचित् हृष्यति कुप्यति ॥

बन्धन तभी होता है जब मन
कुछ चाहता है दुखी होता है ।
कुछ छोड़ता है कुछ पकड़ता है
किसी पर खुश होता है
किसी पर गुस्सा होता है ॥

8.2

तथा मुनित यथा चित्तम
न वाञ्छति न शौचति ।
न मुञ्चति न गृह्णाति
न हृष्यति न कुप्यति ॥

मुनित तभी होती है जब मन
न कुछ चाहता है न दुखी होता है ।
न कुछ छोड़ता है न पकड़ता है
न खुश होता है न गुस्सा होता है ॥

तदा बन्धो यदा चित्तम्
सन्तम कासु अपि क्लृप्तम् ।

तदा मोक्षो यदा चित्तम्
असन्तम सर्वं क्लृप्तम् ॥

बन्धन तभी होता है जब मन
किसी भी विषय वस्तु में
लगाव रूपि लालच रखता है ।

मुक्ति तभी होती है जब मन
सभी विषय वस्तुओं में कोई
लालच लगाव नहीं रखता ॥

8.4

यदा न अहम तदा माहा^{२२}
यदा अहम बंधनम तदा ।
मत्वा इति हेलया किंचित
मा गृहाण विमुंच मा ॥

जब अहंकार नहीं होता
तभी व्यक्ति मुक्त होता है
जब अहंकार (कलने का धमड़)
न होता है तभी बंधन होता है ।
ऐसा समझ कर जानकर
अपनी मर्जी से इच्छा से
न कुछ पकडा
न कुछ छोडा ॥

आठवाँ अध्याय समाप्त

नौवाँ अध्याय

१।

अष्टावक्र उवाच

कृत अकृते च क्षन्धानि
कदा शान्तानि कस्य वा ।

स्वप्न सात्त्वा इह

निर वेदात् भव

त्याग परो अव्रती ॥

क्या करें क्या न करें

ऐसी उलझन कब किसकी

शांत हुई है । ऐसा जान कर

समझ कर चुनाव - रहित हो जाओ

क्योंकि तुम त्याग और व्रत

संकल्प आदि से परे हो ॥

9.2

कस्य अपि तात धन्यस्य
लोक चेष्टा अवलोकनात् ।

जीवित इच्छा

बुभुक्षा च बुभुक्षा

उपशमम गता ॥

हे प्रिय! किसी भाग्यशाली

धन्य व्यक्ति की ही

लोगों की कोशिशों को

ध्यान से देखने समझने

से ही संसार में जीने की

भोगने की और मूर्खता की

इच्छा शांत हो जाती है ॥

अनित्यम सर्वम स्वं इदम
 ताप त्रितय दूषितम् ।
 असारम निन्दितम् हेयम्
 इति निश्चित्य शाम्भ्यति ॥

यहाँ इस संसार में सब कुछ
 अनित्य अस्थिर और तीनों
 संतापों (शारीरिक, मानसिक अध्यात्मिक)
 से उलझनों में उलझा हुआ है ।
 यह असार (अंतहीन) है
 यह निंदनीय है छोड़ने योग्य है ।
 ऐसा निश्चित पक्के तौर पर
 अनुभव कर लो पर ही हमें
 शांति मिलती है ॥

9.4

को असौ काला
वयः किम वा यत्र
द्वन्द्वानि नो नृणाम ।
तानि उपेक्ष्य
यथा प्राप्तवर्त
सिद्धिम् अवाप्नुयात् ॥

वह काल सा समय था
काल सी स्थिति है जिसमें
लोगों को दुविधा नहीं आती ।
उनकी उपेक्षा करके भुला कर
जो मिल उसी में रहने वाला
ही सिद्धि को प्राप्त होता है ॥

नाना मतम महर्षीणाम्
 साधूनाम् योगीनाम् तथा ।
 द्रष्ट्वा निवेदम आपन्नः
 को न शाम्यति मानवः ॥

महर्षियों योगियों साधुओं
 के कई अलग अलग विचार हैं ।
 इन सबको देख सुन कर
 इनसे ऊँच कर बैरागी (राग रहित)
 होकर कौन व्यभिक्त अंत में
 शांत नहीं होता ॥

9.6

कृत्वा मूर्ति परिज्ञानम चैतन्यस्य
न किम गुरुः ।

निर्वेद समता युक्त्या
यो तारयति संसृते ॥

जो चैतन्य (हमारा होश बोध)
की ज्ञान रूपी मूर्ति बनाकर
वैराग्य समान-दृष्टि की विधि
द्वारा संसार से हमें तारता
है क्या वह गुरु नहीं है ॥

पश्य भूतविकारान् त्वम्
 भूतमात्रान् यथार्थतः ।
 तत्क्षणात् बन्धनिमुक्तः
 स्वरूपअस्थो भविष्यसि ॥

अपने शरीर विकारों (विचार, उलझनें)
 को केवल भूत (जो लगता है पर
 है नहीं) की तरह समझ लोगे
 कि देख लोगे तो उसी वक्त
 तुम बन्धनों (शरीर विचारों के)
 से मुक्त होकर अपने स्वरूप
 (बोध रूप) में स्थित हो जाओगे
 ठहर जाओगे ॥

१.४

वासना श्व संसार
इति सर्वा विमुच्य ताः ।
तत् त्यागात्

वासना त्यागात्
स्थिति अद्य यथा तथा ॥

वासनाएं इच्छाएं ही संसार हैं
इन सबको छोड़ दो ।
वासनाओं इच्छाओं को छोड़ने से
संसार अपने आप छूट जाता है
और तब हमारी स्थिति हमारा
जीवन जैसा वास्तव में है
वैसा ही हो जाता है ॥

नौवाँ अध्याय समाप्त

दसवीं अध्याय

10.1

अष्टावक्र उवाच

विहाय वैरिणम् कामम्

अर्थम् च अनर्थम् सकुलम् ।

धर्मम् अपि शत्रुयोः हेतुम्

सर्वत्र अनादरम् कुरु ॥

अनर्थ से भरे भुक्ति के शत्रु
काम और धन की उपेक्षा करो ।

इव दोनों के कारण

धर्म की भी खोज

जगह अनादर उपेक्षा करो ॥

10.2

स्वप्न इन्द्रजाल वत पश्य
दिनानि त्रीणि पंच वा ।
मित्र क्षेत्र धन आगार
दार दारया आदि सम्पदः ॥

अपने मित्र जमीन धन
घर स्त्री भाई आदि
सम्पत्तियों को तीन या
पाँच दिन ध्यान से देखो ।
यह सब सपने जादू की
तरह कुछ दिन ही
टिकते या साथ देते हैं ॥

यत्र यत्र भवेत् तृष्णा
 संसारम् विद्धि तत्र वै ।
 प्रौढ वैराग्यम् आश्रित्य
 कीर्त तृष्णाः
 सुखी भव ॥

जहाँ जहाँ जिस भी किसी
 विषय वस्तु में आपकी
 इच्छा तृष्णा लगाव है
 वह सब संसार का ही
 रूप है हिस्सा है ।
 वैराग्य (राग रहित होना) का
 लंबा गहरा अभ्यास करके
 तृष्णा रहित बनके सुखी होओ ॥

10.4

तृष्णा मात्र आत्मको बन्धः
तत् नाशो मोक्ष उच्यते ।
भव असंशक्त मात्रेण
प्राप्ति तुष्टि मुहः मुहः ॥

केवल तृष्णा इच्छा ही
आत्मा को बाँधती है ।
उसके नाश होने को
ही मोक्ष मुक्ति कहते हैं ।
इच्छा रहित लगाव रहित
होते ही बार बार आत्मा
की प्राप्ति और संतुष्टि
हो जाती है ॥

त्वम एकः चेतनः ब्रह्मा
 जडम विश्वम असत् तथा ।
 अविद्या अपि न किञ्चित् सा
 का वृभुत्सा तथा अपि ते ॥

तुम एक ही ब्रह्म
 चेतन बोध होश रूप हो ।
 यह संसार अपने आप में
 जड़ स्थूल और माया रूप है ।
 वो अज्ञानता भी कुछ नहीं है ।
 अब और क्या जानने
 चाहते हो तुम ॥

10.6

राज्यम सुताः कल्त्राणि
शरीराणि सुखानि च ।
संसक्तस्य अपि नष्टानि
तत्र जन्मानि जन्मानि ॥

राज्य संपत्ति स्थियाँ
शरीर और अन्य
सुख तो तुझ संसक्त
रागवान के कई
जन्मों में मिल और
नष्ट समाप्त होत रहे हैं ॥

अलम अयेन कामेन

सुकृतेन आपि कर्मणा ।

रथः संसार कोन्तारे

न विज्ञान्तम अभूत मनः ॥

तीबा तीबा । बहुत हो गया

घन कामाना काम को भोगना

अच्छ काम (दान आदि) भी

बहुत कर लिये ।

क्योंकि इन सबको करने

पर भी इस जंगल रूपी

संसार में मन शान्त

नहीं हुआ है ॥

10.8

कृतम न कर्तुं जन्मानि
कायेन मनसा विरा ।
दुखम आयासदम कर्म
तत्त अद्य अपि उपश्यताम ॥

शरीर से मन से जुवान से
कितने जन्मों में कई बार
तुम दुख और मेहनत से
भरे काम नहीं कर चुके ?
इस जन्म में अब तो
उनसे लोवा करो आराम करो
ठहर जाओ रुक जाओ ॥

दसवीं अध्याय समाप्त

अष्टावक्र उवाच

भाव अभाव विकार च
स्वभावात् । इति निश्चयी
निर्विकारो गतक्लेशः

सुरेण ख उपशाम्यति ॥

विषय वस्तुओं के होते
या न होने के जो
कारण हैं वो सब उनके
स्वभाव प्रकृति से होते हैं ।

ऐसा पक्का ज्ञान लेने पर
विकार - रहित क्लेश - रहित
व्यक्ति आराम से सहज ही
शांत हो जाता है ॥

इश्वरः सर्व निमाता

न इह अन्य

इति निश्चयी ।

अंतर्गतं भूलितं सर्व आशाः

शांतः क्व अपि न सज्जते ॥

इश्वर सर्व विषय वस्तुओं आदि

का बनाने चलाने वाला है

और कोई नहीं । ऐसा पक्का

ज्ञान लेने वाले की अंदर से

सभी आशाएँ सपने समाप्त हो

जाते हैं और वह शांत होकर

किसी विषय वस्तु में लगाव

नहीं रखता ॥

आपदः सम्पदः काले

देवात् इव

इति निश्चयी ।

तृप्तः स्वस्थ इन्द्रियो नित्यम्
न वाञ्छति न शोचति ॥

मुसीबतें और खुशियाँ सम्पत्तियाँ

समय पर भाग्य से ही आती हैं ।

यह पक्का समझने जानने वाला

हमेशा संतुष्ट और स्वस्थ रहता है ।

वह न कुछ चाहता है और

न किसी बात पर दुखी होता है ॥

सुख दुख जन्म मृत्यु
देवात स्व इति निश्चयी ।

साध्यादशी तिर-आयासः
कुर्वन्न अपि न लिप्यते ॥

सुख दुख जीवन मृत्यु
सब भाग्य से समय पर
ही हात है ।

रेश्मा पक्का जानने समझने वाला
लक्ष्य को न देखते हुए आराम
से काम करता है और उसमें
तिपट चिपक या उलझ नहीं
जाता है ॥

चिन्तया जायते दुरवम
 न अन्यथा इह
 इति निश्चयी ।
 तथा हीनः सुखी शान्तः
 सर्वत्र गलित स्पृहः ॥

यह पक्का है कि
 चिन्ता करने से ही
 दुख होता है ।
 चिन्ता रहित व्यक्ति
 सुखी शान्त रहता है
 और उसकी सब विषय
 वस्तुओं में इच्छा गल
 जाती है समाप्त हो जाती है ॥

न अहम देहा

न मे देहा ।

बौद्धो अहम

इति निश्चयी ।

केवल्यम इव संप्राप्तो

न स्मरति अकृतम कृतम ॥

मे शरीर नहीं है

न शरीर मेरा है

मे केवल बौद्ध है ।

रेशा पक्का जानेन वाला

अपन आप मुक्त हो जाता है ।

फिर वह किये और न किये

हरे कर्मों को याद नहीं करता ॥

आब्रह्म तन्व पर्यन्तम
अहम एव इति निश्चयी ।
निर्विकल्प शुचिः शान्तः
प्राप्त अप्राप्त विवर्तितः ॥

सृष्टि रचयिता ब्रह्म से लेकर
 घास के तिनके तक मैं
 मैं ही हूँ अर्थात् मेरे ही
 मेरे बौद्ध से ही यह सब है।
 ऐसा जानने समझने वाला
 इच्छा-रहित साफ शुद्ध शान्त
 होता है। वह कुछ मिलने या
 न मिलने की उलझन से छूट
 जाता है ॥

॥. 8
 ना^८ना आश्चर्य^८म इ^८दम वि^८श्वम
 न किं^८चित इ^८ति नि^८श्चयी ।
 नि^८वासनः स्फूर्ति^८ मा^८त्रा
 न किं^८चित इ^८व शान्ति^८ ॥

अनेक आश्चर्यों से भरा यह
 संसार असल में कुछ भी
 नहीं है । ऐसा पक्का जानने
 वाला वासना रहित और सहज
 जीने वाला कुछ न करे
 कुछ न होत हुए अपने
 आप शांत हो जाता है ॥

अथाहंवा अध्याय समाप्त

वीरहवा अध्याय

जनक उवाच

12.1

काया कृप्या असहः पूर्वम्
ततो वाक विस्तरा असहः
अथ पिता असहः ।
तस्मात् एवम् एव
अहम् आस्थितः ॥

पहले मैं शरीर के कर्मों से थका
फिर जुवान के कर्म (बौलना) से थका
अब पित के कर्म पिता से थककर
इन सबसे दूट कर मैं रस
ही अपने आप में डूब गया
हूँ रुक गया हूँ ॥

प्रीति अभावैत शब्दादेः

अदृश्यत्वेन च आत्मनः ।

विष्णुप रकाग्र हृदय

स्वम रव

अहम आस्थितः ॥

शब्दा मे बालन मे

आत्मा के न दिखने से

हृदय को रकाग्र करने में मेरी

खुचि लगाव आग्रह स्वप्न

होने के कारण अब मैं

ऐसे ही सहज ही अपने

आप में ठहर गया हूँ

रुक गया हूँ ॥

सम अध्यास आदि

विहितो व्यवहारः समाधये ।

स्वम विलोक्य नियमम

स्वम स्व

अहम आस्थितः ॥

भूम अज्ञानता के कारण

हृद उलझनों को मिटाने

के लिए ही समाधि के

लिए बैठना व्यवहार आदि

करना पड़ता है। इस नियम

को समझ कर मैं ऐसे ही

अपन आप में बहर गया

हूँ रुक गया हूँ ॥

हय अपादय विरहात्
स्वम हय विषादयोः ।

अभावात् अद्य
हे ब्रह्मन् स्वम स्व
अहम आस्थितः ॥

हे ब्रह्म रूप गुरुदेव
कद्व पकड़ने यां छोड़ने
से छूट जाने पर और
खुशी और गम के
धुंधले उलझन के न
होने पर अब मैं
ऐसे ही अपने आप
में डूब गया हूँ ॥

आश्रमम अनाश्रमम ध्यानम
 चित्त स्वीकृतम वर्जनम ।
 विकल्पम मम वीक्ष्यै रतैः
 स्वम स्व अहम आस्थितः ॥

गृहस्थी होता सन्यासी होना
 ध्यान योग आदि करना
 मनपसंद वस्तु को छोड़ना
 यह सब मेरे ही चुनाव हैं ।
 मैं इन सबसे अलग हूँ
 ऐसा देख समझ कर मैं
 ऐसे ही अपने आप में
 ठहर गया हूँ ॥

12-6

कर्म अनुष्ठानम् अज्ञानात् यथा

एव उपरमः तथा ।

बुद्ध्या समयक इदम् तत्त्वम्

एवम् एव अहम् आस्थितः ॥

~~जैसे~~ करने का अहंकार अज्ञानता है

~~वैसे~~ कर्म न करना या छोड़ना

भी अज्ञानता है ।

इस सच्चाई को जान कर

समझ कर अब मैं अपने

आप में ढहर गया हूँ ॥

अचिन्त्यम चिन्त्यमानो अपि
चिन्तारूपम भजति असौ ।
त्यक्त्वा तत् भावनम्
तस्मात् श्वम् श्व ॥
अहम् आस्थितः ॥

अचिन्त्य (जिसे सोचा न जा सके)
 का चिन्तन (ध्यान विचार सोच)
 करके भी व्यक्ति केवल
 चिन्ता ही करता है ।
 ऐसी चिन्तन की भावना
 को छोड़कर मैं अपने
 आप में अपने भीतर
 ही ठहर गया हूँ ॥

स्वम स्व कृतम येन
 स कृतार्थो भवेत् असौ ।
 स्वम स्व स्वभावो यः
 स कृतार्थो भवेत् असौ ॥

जो कर्म करके साधना करता है
 वह मुक्त शान्त हो जाता है ।
 मगर जो स्वभाव से ही
 शान्त है वह भी मुक्त
 हो जाता है (बिना साधना के) ॥

वारहवाँ अध्याय समाप्त

तेरहवाँ अध्याय

13.1

जनक उवाच

अकिंचन	भवत	स्वास्थ्यम
कौपीनं च	अपि	कुलभम ।
व्याग	आदान	विहाय
अस्मात्	अहम्	असौ
यथा	सुरम	॥

यह संसार कुछ भी नहीं है
 इस भाव अहसास से मिलन
 वाला सुख सब कुछ छोड़
 लंगाट पहन सन्यासी को भी
 नहीं मिलता । छोड़ने पकड़ने की
 उलझन को त्याग कर मे
 सुखी हो गया हूँ ॥

कुत्र अपि रवेदः कायस्य
 जिह्वा कुत्र अपि शिद्यते ।
 मनः कुत्र अपि
 तत् त्वत्त्वा
 पुरुष अर्थे स्थितः सुखम् ॥

कहीं शरीर के दुख दई हैं
 कहीं जुबान के जैसे निंदा चुगली
 कहीं मन के कर्मों (चिंता धृणा)
 पर शिद्य आती हैं ।
 मैं तीनों (शरीर वाणी मन) के
 कर्मों की उपेक्षा करके
 अपने भीतर सुख से
 ठहर गया हूँ ॥

कृतम किम अपि
न ख स्यात
इति संचिन्त्य तत्त्वतः ।
यदा यत कर्तुम आयाति
तत् कृत्वा
आसे यथा सुखम ॥

कोइ भी कम आत्मा
से तदीं किया जाता ।
इस तरह उस आत्म
तत्त्व को ध्यान मे रख
कर जो कम करने को
आन पड़ उसे करक मे
अपन आप मे सुखी हूँ ॥

कर्म निष्कामानि बन्ध भावा

देहस्थ योगिनः ।

संयोग वियोग विरहात्

अहम् आसे

यथा सुखम् ॥

कर्म के करने या

न करने की भावना

से बंधा व्यक्ति शरीर

से बंधा योगी ही है ।

मैं चीजाँ आदि के मिलने

या छूट जाने के बंधन

से छूट कर अपने आप

मैं सुखी हूँ ॥

अर्थ अतर्था न मे
 स्थित्या गत्या वा शयनेन वा ।
 तिष्ठन् गच्छन् स्वपन् तस्मात्
 अहम् आसे यथा सुखम् ॥

मेरा बैठ रहने से
 कहीं जाने से या
 लेट साय रहने से
 कोई नुक्सान या फायदा
 नहीं होता । इसलिये मैं
 बैठते हुए चलते हुए
 साय सपने लेते हुए
 जैसा भी हूँ सुखी हूँ ॥

स्वपतो न अस्ति मे हानिः
 सिद्धिं यत्नवतो न वा ।
 नाश उल्लासो विहाय
 अस्मात् अहम् आस
 यथा सुखम् ॥

मेरे लिए न तो साध
 रहने में कोई अनुमान है
 न मेहनत करत रहने
 में कोई सिद्धि है ।
 नाश और खुशी आदि
 के द्वन्द्वों उलझनों से
 दूतकर मैं अपने में
 ही सुखी हूँ ॥

सुख आदि रूप अनियत
भाव आलोक्य भूरिशः ।
शुभ अशुभ विहाय
अस्मात् अहम् आसे
यथा सुखम् ॥

अपनी भावनाओं अनुभवों में
सुख दुख और रूप की
अनित्यता अस्थिरता को बार
बार देख कर में अच्छे
और बुरे की दुविधा से
छुटकर अपने आप में
सुखी हूँ ॥
तेरहवा अध्याय समाप्त

चौदहवाँ अध्याय

14.1

जनक आच

प्रकृत्या शून्य चित्तो यः

प्रमादात् भाव भावतः ।

निद्रितो बोधित इव

क्षीण संसरणो हि सः ॥

जो स्वभाव से शून्य चित्त है

जिसकी मन रुपी उलझन मिट गई

जो केवल आदत से कर्म करता है

जो सोया हुआ भी

होश में रहता है ।

उसके लिए ही यह

संसार छूट जाता है ॥

क्व चनाति क्व मित्राणि
 क्व मे विषयत अस्यवः ।
 क्व शास्त्रम्
 क्व य विज्ञानम्
 यदा मे गलित स्पृहा ॥

जब मेरी इच्छाएं वासनाएं
 ही मिट गई हैं तो
 मेरे लिये कहाँ धन
 कहाँ मित्र और कहाँ
 मुझमें विषय वस्तुओं रूपी चोर
 और कहाँ अब मेरे लिये
 शास्त्र किताबें और कहाँ ज्ञान ॥

विज्ञाते साक्षि पुरुषे
 परमात्मानं च ईश्वरे ।
 निराशये बन्ध मोक्षे च
 न चिन्ता मुक्तये मम ॥

अपने साक्षी पुरुष में
 परम आत्मा और ईश्वर
 का ज्ञान लेते पर
 और बंधन व मोक्ष
 दोनों से निराश (आशा - रहित)
 हो ज्ञान पर अब
 मुक्ति मुक्त होने की
 चिन्ता भी नहीं रही ॥

अन्तः विकल्प शून्यस्य
 बहिः स्वच्छन्दे चारिणः ।

भ्रान्तस्य इव दशाः
 ताः ताः तादृशा एव जानते ॥

जिसके अंदर की सभी
 कुविधायें चुनाने स्वतन्त्र हो गये
 जो बाहर आजाद बेपरवाह जैसा
 रहता है दिखता है ऐसा
 बेपरवाह की दशा और
 बेताब व्यवहार को उस
 जैसा ही कोई समझ सकता है ॥

चौदहवाँ अध्याय समाप्त

अष्टावक्र उवाच

यथा तथा उपदेशेन
कृतार्थः सत्त्वं बुद्धिमान् ।
आजीवन अपि जिज्ञासु
परः तत्र विमुह्यति ॥

सही उत्तम बुद्धिवाला व्यक्ति
जैसे जैसे थोड़े से उपदेश
से ही मुक्त हो जाता है ।
लेकिन मुक्ति को कहीं बाहर
ढूँढने वाला व्यक्ति जीवन
भर मुक्ति की कामना
इच्छा ही करता रहता है ॥

^१मा^२क्षा वि^१षय वै^१रस्यम
^१वन्धो वै^१षयिका रसः ।
 रतावत रव विज्ञानम
 यथा इच्छसि
 तथा कुरु ॥

किसी विषय वस्तु में लगाव
 न होना ही मोक्ष मुक्ति है
 और उन्में लगाव लालच
 इच्छा होता ही बंधन है ।
 इतना ही ज्ञान है ✖
 इसे सपझ कर जो
 जी में आय करो ॥

वाग्मि प्रज्ञः महाउद्योगम जनम
 मूक जड आलसम करोति ।
 तत्त्व ज्ञेय अयम
 अतः त्यक्तो बुभुक्षुभिः ॥

यह तत्त्व ज्ञान का ज्ञेय-
 बहुत जालने वाले को ज्ञात
 बहुत बुद्धि वाले को अनजान
 बहुत मेहनत वाले का आलसी
 बना देता है । इसीलिये
 संसार को भोगन चाहने
 वाले लोग इससे दूर
 ही रहते हैं ॥

न त्वम देहा
 न ते देहा
 भोक्ता कर्ता न वा भवान् ।
 पिद रूपो असि
 सदा साक्षी निपेक्ष
 सुखम चर ॥

न तुम शरीर हो
 न शरीर तुम्हारा है
 न तुम कर्ता हो
 न तुम भोक्ता हो ।
 तुम चैतन्य होश बोध रूप हो
 सदा साक्षी अपेक्षा आश रहित हो ।
 इसलिय सुख आराम से रहे ॥

राग द्वैषो मनो धर्मो

न मनः ते कदाचन ।

निर-विकल्पो असि

बोध आत्मा निर-विकारः

सुखम चर ॥

प्रेम और वृणा आदि

मन के गुण हैं और

मन तुम्हारा कभी भी नहीं

हो सकता ।

तुम विकल्प चुनाव रहित हो

विकार दोष रहित हो

केवल बोध होश रूप आत्मा हो

इसलिए आराम से धूमो ॥

सर्व भूतेषु च आत्मात्म
 सर्व भूतानि च आत्मानि ।
 विशाय

निर - अहंकारो निर - मम
 त्वम सुखी चर ॥

सर्व भूत प्राणियों जीवों में
 आत्मा को और सभी
 जीवों को आत्मा में
 जान कर तुम

अहंकार धमंड ममता मोह
 रहित होकर सुखी हो जाओ ॥

विश्वम स्फुरति यत्र इदम
तरंगा इव सागरे ।
तत त्वम एव
न संदेह चिन्मूर्ते
विज्वरो भव ॥

जिसमें यह संसार
सागर में लहरों
की तरह उठता है
वह तुम ही हो ।
उस चैतन्य रूप में
संदेह न करके
ताप रहित हो जाओ ॥

श्रद्धास्व तात श्रद्धास्व

न अत्र मोहम

कुरुस्व भोः ।

ज्ञान स्वरूपो

भगवान् आत्मा

त्वम प्रकृते परः ॥

हे प्रिय अपने आप

मैं श्रद्धा रखो श्रद्धा ।

किसी अन्य विषय

वस्तु में मोह न रखो ।

तुम प्रकृति से परे हो

ज्ञान बोध तुम्हारा स्वरूप है

तुम आत्मा रूपी भगवान् हो ॥

गुणो संवेष्टितो देहः
 तिष्ठति आयाति याति च ।
 आत्मा न गन्ता न आगन्ता
 किम रनम अनुशोचसि ॥

गुणों से सजा लिपटा
 यह शरीर बैठता है
 आता है व चला जाता है ।
 लेकिन आत्मा न कहीं
 जाती है न आती है ।
 फिर तुम इस शरीर
 के लिए क्यों शोक चिंता
 करते हो ॥

15.10

देहः पितृवत् कल्प अन्तम
 गच्छतु अव्य श्व वा पुनः ।
 क्व वृद्धिः क्व ~~स्व~~
 न वा हानिः
 तव पिन्मात्र रूपिणः ॥

यह शरीर चाह बहुत
 देर तक बना रह
 चाह अभी चला जाय
 चाह फिर लौट आय
 इससे तुझ चेतन होश
 रूप में कहा कुछ
 बढ़ता है या घटता
 है ॥

त्वयि	अनंत	महाम्भोधौ
विश्व	वीचिः	स्वभावतः ।
उद्यत	वा	अस्तम आयातु
न	ते	वृद्धिः
न	वा	क्षति ॥

तुझ	अनंत	महासागर	में
संसार	रूपी	लहरें	अपन
आप	स्वभाव	से	ही
उठती	हैं	और	गिर
जाती	हैं ।	इनसे	तुझ
में	न	तो	कुछ
बढ़ता	है	न	कुछ
घटता	या	नुकसान	होता है ॥

15.12

तात चिन्मात्र रूपो असि
न ते भिन्नम इदम जगत ।
अतः कस्य कथम कुत
हेय उपादेय कल्पना ॥

प्रिय तुम केवल चेतना
होश रूप हो ।
यह संसार तुमसे आभला
अलग नहीं है ।
इसलिय इसमें तुम
किसको कहाँ और कैसे
झाड़ने या पकड़ने की
कल्पना रव्याल करते हो ॥

15.13

रकस्मिन्	अव्यये	शान्ते	
चिदाकाशे	अमले	त्वयि	।
कुतो	जन्म	कुतः	कर्म
कुतो	अहंकार	एव	च ॥

तुझ	रक	अविनाशी	शान्त
तिर्मल	चेतना	रूपी	आकाश मे
कहाँ	जन्म	कहाँ	कर्म
आर	कहाँ	अहंकार	ही
है	सकता	है	॥

15.14

यत त्वम पश्यसि तत्रः
 एकः त्वम श्व प्रतिभाससे ।
 किम पृथक् भासते स्वर्णात्
 कटक अंगद नूपुरम् ॥

जहाँ भी तुम देखते हो
 वहाँ एक तुम तुम्हारा ही
 चेतन आत्मा रूप झलकता है ।
 भला सोन के गहन जैसे
 कगन वाजू बंदे पायल आदि
 सोन से अलग कैसे दिख
 सकत है ॥

अयम सौ अहम

अयम न अहम

विभागम इति संत्यज ।

सर्वम आत्मा

इति निश्चय

तिः संकल्पः सुरवी भव ॥

मैं वो हूँ

मैं यह नहीं हूँ

ऐसे विभाजन को छोड़ दो ।

सब कुछ आत्मा चेतना ही है

ऐसा पक्का जान कर समझ कर

संकल्प रहित होकर

सुरवी हो जाओ ॥

त्वं श्वं अज्ञानतो विश्वम्
 त्वम् श्वः परम् अर्थतः ।
 त्वम् ततो अन्यो न अस्ति
 संसारी न असंसारी च कश्चन ॥

तुम्हारी नासमझी अज्ञानता से
 ही यह संसार अलग है ।
 तुम ही श्वं परम् अर्थ हो
 तुम ही वो परम् ज्ञान हो
 कोई दूसरा नहीं है तुमसे ।
 यह ज्ञात न संसारी है
 न असंसारी (संसार से अलग) है ॥

भ्रान्ति मात्रम इदम विश्वम
 न किंचित इति निश्चयी ।
 निर-वासनः स्फूर्ति मात्रो
 न किंचित इव शाम्भति ॥

यह संसार केवल भ्रान्ति है
 यह केवल दिखता है लेकिन
 इसमें अपना कुछ भी नहीं है।
 ऐसा समझने जानने वाला
 वासना रहित विचार रहित
 न कुछ होकर शांत रहता है ॥

एकः स्व भवान्भोद्यौ
 आसीत् अस्ति भविष्यति ।
 न ते बन्धौ
 अस्ति मोक्षो वा ।
 कृत कृत्यः शुद्ध
 सुखम चर ॥

महासागर की तरह तुम
 एक ही थे शक्त
 एक ही हो
 एक ही रहोगे । तुम्हारा
 न बंधन है न मोक्ष है ।
 इसलिये कृतार्थ (अपने को
 धन्य जानकर) सुख से रहे ॥

15.19

मा संकल्प विकल्पाभ्याम
 चित्तम क्षौभय चिन्मय ।
 उपशान्त्य सुखम तिष्ठ
 स्त्र आत्मानि आनन्द विग्रहे ॥

है चेतना स्वरूप
 अपने मन को संकल्पों विकल्पों
 में उलझा कर परेशान न हो ।
 अपनी आत्मा में आनन्द पूर्वक
 शांत होकर सुख से
 आराम से बैठा ॥

त्यज श्व ध्यानम सर्वत्र
मा किंचित हृदि धारय ।
आत्मा त्वम मुक्त श्व असि
किम विमृश्य कश्चिद्यसि ॥

सभी विषयों वस्तुओं पर
ध्यान लगाना छोड़ दो ।
कुछ भी दिख मे
न रखो ।

तुम आत्मा रूप पहल से
ही मुक्त हो । अब इस पर
और सलाह मशवरा करेक
क्या करोगा ॥

पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त

सौलहवा अध्याय

16.1

अष्टावक्र उवाच

आचक्ष्व श्रणु वा तात
नाना शास्त्राणि अनेकशः ।

तथापि न तव स्वास्थ्यम
सर्वम विस्मरणात् ऋते ॥

प्रिय चाह तुम अनको
शास्त्र किताबें आदि बार बार
पढ़ो कहो या सुनो
तब भी उन सबको
भुलाये बिना तुम अपने
आपको नहीं पा सकत
स्वस्थ शांत नहीं हो
सकत ।

भोगम कर्म समाधिमे वा
 कुरु विश तथापि ते ।
 यत्नम निरस्त सर्व आशम
 अति अर्थम शैचयिष्यति ॥

हे ज्ञानी चाह तुम संसार
 को भोगन के लिये कर्म
 करो चाह समाधि के लिये
 यत्न करो जब तक तुम्हारा
 मन सब आशाओं से
 हार नहीं जाता तब तक
 वह परम अर्थ यानि मुक्ति
 के लिये तड़पता रहेगा ॥

आयासात सकलो दुखी
न रनम जानाति कश्चन ।
अनेन एव उपदेशेन
धन्यः प्राप्नोति निर्वृतिम ॥

मेहनत करने से सभी दुखी हैं
पर कोई भी यह

जानता समझता नहीं ।

भाग्यशाली धन्य व्यक्ति
तो इतने उपदेश को

समझ कर ही मुक्त

हो जाते हैं यानि जीवन

में मेहनत के भ्रम से

छूट जाते हैं ॥

व्यापारे विद्यते यः तु
 निमेष उन्मेषयो अपि ।
 तस्य आलस्य धुरीणस्य
 सुखं न अन्यस्य
 कस्यचित् ॥

जो पलकों को रवालेन
 और बंध करने से
 भी विवक्षता हो उस
 आलस के धुरीण माहिर
 जैसा सुख आराम किसी
 और को कैसे हो सकता
 है अर्थात् जो किसी काम
 में इच्छुक न हो वही सुखी है॥

इदम	कृतम	इदम	न
इति	कृत्	मुक्तम	
यदा	मनः	।	
धम	अर्थ	काम	मोक्षेषु
निर	अपेक्षम	तदा	भवेत् ॥

यह	काम	कर	लिया है
यह	काम	नहीं	हुआ है
जब	मन	ऐसी	दुविधाओं
से	छूट	जाता	है
तब	ही	उसकी	
धम	अर्थ	काम	मोक्ष
में	उसकी	कोई	अपेक्षा
रहता	नहीं	रहती	॥

विरक्तो विषय द्वेष्टा
 रागी विषय लोलुपः ।
 ग्रह-मौक्ष विहीनः तु
 न विरक्तो
 न रागवान् ॥

विषय वस्तु में घृणा
 रखने वाला विरक्त है
 विषय वस्तु में इच्छा
 रखने वाला रागी है ।
 उनमें पकड़न छोड़न की
 इच्छा से मुक्त व्यक्ति
 न विरक्त है
 न रागी है ॥

हेय ^१आदेयता तावत्
 संसार ^१वितपात् अंकुरः ।
 स्पृहा जीवति यावत्
 वे ^२निर विचार
 दशाः पदम् ॥

विषयो ^१वस्तुओं को
 पकड़ना ^२और छोड़ना
 तब तक रहता है
 जब तक संसार स्पर्श
 पैड़ का बीज अंकुर
 इच्छा तृष्णा बाकी है ।
 इससे द्यूटकर निर-विचार
 होकर ही परम पद मिलता है ॥

प्रवृत्तों जायते रागो
 निवृत्तों द्वेष शव ही ।
 निर द्वन्द्वो बालवत धीमातः
 श्वम शव व्यवस्थितः ॥

किसी को चाहते से
 उसमें लगाव और न
 चाहते से उसमें घृणा
 पैदा होती है ।
 इस दुर्विद्या से दूर रहकर
 बुद्धिमान व्यक्ति बच्चों की
 तरह अपने आप जैसी
 स्थिति हो वैसा ही हो
 जाता है ॥

हातुम इच्छति संसारम
 रागी दुःख जिहासया ।
 वीत रागो ही निदुःखः
 तस्मिन् अपि न शिद्यते ॥

रागी लालची व्यक्ति ही
 दुःखों से छुटकारा पाने
 के लिए संसार छोड़ना चाहता है।
 राग-रहित इच्छा-रहित व्यक्ति
 ही दुःखों से छूट सकता है
 क्योंकि वह संसार से भी
 शिखता नहीं उबता नहीं ॥

यस्य अभिमानो मोक्षे अपि
 देहे अपि ममता तथा ।
 न च योगी
 न वा शानी
 केवलम् दुरव भाक् असौ ॥

जिसे अपनी मुक्ति पर
 भी धमंड है और
 अपने शरीर से भी
 लगाव है ।

वह न तो योगी
 है न शानी है ।
 वह केवल दुरव का
 भागी भागेन वाला है ॥

हरे यदि उपदेष्टा ते
 हरि कमलजो अपि वा ।
 तथापि न तव स्वास्थ्यम
 सर्व विस्मरणात् भ्रष्टे ॥

यदि तुम्हें उपदेश शिक्षा देने वाले
 ब्रह्म विष्णु यां महेश (शिव)
 भी हैं तब भी उन
 सबको भुलाये बिना तुम्हें
 शांति स्वास्थ्य नहीं मिल
 सकता ॥

सोलहवां अध्याय समाप्त

सत्रहवाँ अध्याय

17.1

अष्टावक्र उवाच

तेन ज्ञान फलम प्राप्तम
योग अभ्यास फलम तथा ।
तृप्तः स्वच्छ इन्द्रियो
नित्यम शकाकी रमते तु यः ॥

उसे ही ज्ञान और योग
अभ्यास का फल मिलता है
जो सदा संतुष्ट है तृप्त है
जिसकी इन्द्रियाँ स्वच्छ हैं
जो सदा अकेल में रमता है ॥

17.2

न कदाचित् जगति अस्मिन्
तत्त्वज्ञो हन्तः खिद्यति ।

यत् शक्तेन तेन

इदम् पूर्णम् ब्रह्माण्ड मण्डलम् ॥

यह ठीक ही कहते हैं कि

तत्त्व का ज्ञाता इस संसार

में कभी भी खेद अफसोस

नहीं करता है ।

वही शक्त होता है जिसके

चलते यह ब्रह्मांड पूर्ण हैं ॥

न जातु विषयः के अपि
 स्व-आरामम हर्षयन्ति आ अमी ।
 सल्लकी पल्लव प्रीतम इव
 इभम निम्ब पल्लवाः ॥

संसार की कोई विषय वस्तु
 अपने आप से प्रसन्न व्यक्त
 को हर्षित (आनंदित) नहीं करती ।
 जैसे जो हाथी सल्लकी (मधुर बेल)
 के पत्ते खा ले उसे फिर
 नीम के पत्ते कभी पसंद नहीं आते ॥

17.4

यः तु भोगेषु भुक्तेषु
न भवति अधिवासितः ।

अभुक्तेषु निर-आकांक्षी
तादृशो भव दुर्लभः ॥

जो भोगी हुई विषय वस्तुओं में
आसक्त होकर रवा नहीं जाता और
न-भोगी हुई वस्तुओं की इच्छा
अकांक्षा नहीं रखता
ऐसा व्यक्ति ईश मुश्किल
से मिलता है ॥

पुमुक्षुः इह संसार
 मुमुक्षुः अपि दृश्यते ।
 भोगो मोक्ष तिर-आकांक्षी
 विरला हि महाशयः ॥

इस संसार में
 भोगों की इच्छा वाले और
 मोक्ष की इच्छा वाले भी
 नजर आते हैं ।
 लेकिन श्रीमान (महाशय) जी
 कोई विरला ही मिलता है
 जिसे न भोग की न मोक्ष की
 आकांक्षा हो ॥

17.6

^८ धम - ^८ अर्थ - ^{११} काम - मोक्ष^{११},
जीविते मरणे तथा ।

कस्य अपि उदार चित्तस्य
हेय उपोदयता न हि ॥

कोन ऐसा उदार चित्तवाला है
जिसका सब धम अर्थ (धन आदि)
काम मोक्ष जीने और मरने
के इस संसारी पक्ष में कुछ
छाड़ने और पकड़ने की
इच्छा न हो ॥

वाञ्छा न विश्व विलये
न द्वेषः तस्य च स्थितौ ।

यथा जीविका

तस्मात् धन्य

आस्ते यथा सुखम् ॥

जो न इस संसार का विनाश चाहता है
न इसकी दशा स्थिति से वैर करता है ।

वह धन्य व्यक्ति जैसी जीविका
मिले उसी से सुख में रहता है ॥

कृतार्थो अनेन ज्ञानेन
इति स्वम गालितधीः कृती ।

पश्यन् मृण्वन् स्पृशन्
जिघ्रन् अश्नन्
आस्ते यथा सुखम् ॥

इस ज्ञान से कृतार्थ (धन्य) हैं
इतनी भी छुट्टी जिसकी गल (मिट)
गल है जिसकी ऐसा जानी ।
देखते हुए सुनते हुए छूते हुए
सूँघते हुए खाते हुए सब सवत
सुख से आराम से रहता है ॥

शून्या द्रष्टि वृथा चेष्टा
 विकलानी इन्द्रयाणि च ।
 न स्पृहा न विरक्तिः वा
 क्षीण संसार सागरे ॥

जिसकी इस संसार में कोई
 इच्छा या दृष्टि नहीं रही
 उसकी द्रष्टि शांत साफ और
 कोवित्रा बिना किसी लक्ष्य के
 होती है । उसके शरीर के
 सभी अंग शांत दौल हो
 जाते हैं ॥

17.10

न जागती न निद्राति
 न उन्मीलति न मीलति ।
 अहो परदशा नव अपि
 वेत्ते मुक्त चेतसः ॥

न वह जागता है
 न वह सोता है
 न वह आरव खोलता है
 न वह आरव मीचता है
 आश्चर्य है ! मुक्त
 चेतना वाल व्यक्ति की
 ऐसी परम दशा कैसी
 होनी है ॥

सर्वतः दृश्यत स्वस्थः

सर्वतः विमल-आशयः ।

समस्त वासना मुक्ता

मुक्तः सर्वतः राजते ॥

वासना - मुक्त व्यक्त

सब जगह स्वस्थ शांत नजर

नजर आता है ।

सब जगह मेल-रहित

अंतः करण अर्थात् साफ दिल

वाला होता है और

हर जगह मुक्त शोभायमान

होता है ॥

परयन शृण्वन रूपशान

जिघ्रन् अशन गृह्ण

वदन व्रजन ।

इति - नीहिते मुक्तौ

मुक्त एव महावायः ॥

देवते ह्ये सनेत ह्ये

द्यूत ह्ये संचेत ह्ये

स्वात ह्ये लेत ह्ये

खालत ह्ये जात ह्ये

लाभ हाति अके भाव से

मुक्त व्यक्त ही वास्तव

मे मुक्तता महान समुद्र (महा-आश्रय)

की तरह मुक्त होता है ॥

न निन्दति न च स्तोति

न हृष्यति न कुप्यति ।

न ददाति न गृह्णाति

मुक्तः सर्वतः नीरसः ॥

मुक्त व्यक्ति हर प्रभाव विषय वस्तु

में राग-रस रहित होता है ।

वह न निन्दा करता है और

न ही प्रशंसा करता है ।

न बहुत श्रेष्ठ होता है

न बहुत गुरूसा करता है ।

न देता है न लेता है ॥

स अनुरागाम स्त्रियम दृष्ट्वा

मृत्युम वा सम उपस्थितम् ।

अविह्वल मनाः स्वस्थो

मुक्त एव महाशयः ॥

प्रेम सहित स्त्री को देखकर अथवा

समीप आई मृत्यु को देखकर

व्याकुल न होता हुआ

स्वस्थ ब्रह्म मुक्त व्यक्ति

ही (समुद्र रूपी) महान होता है ॥

सुखे दुखे नरे नामाम
 संपत्सु च विपत्सु च ।
 विशेषो न स्व धीरस्य
 सर्वत सम-दर्शिनः ॥

धीरज वाल व्यक्ति को
 सुख में दुख में
 स्त्रीयों और पुरुषों में
 संपदाओं और विपदाओं में
 कुछ भी विशेष, अलग नहीं ।
 वह हर जगह हर स्थिति में
 समान दृष्टि रखता है ॥

न हिंसा न ख कारुण्यम्
 न औदुच्यम् न च दीनता ।
 न आश्चर्यम् न ख च क्षोभः
 क्षीण संसरणे तेरे ॥

जिस व्यक्ति व्यक्ति के
 भीतर यह बाहरी संसार
 तिरोहित (क्षीण) हो जाता है
 उसमें न हिंसा न करुणा
 न अनम्रता न दीनता और
 न ही आश्चर्य (उत्सुकता) और
 न ही गुस्सा होता है ॥

न मुक्तो विषय-क्षेपता

न वा विषय-लोलुपः ।

असंसक्त मनाः नित्यम

प्राप्त-अप्राप्तम उप-अशनुते ॥

मुक्त व्यक्ति न तो

किसी विषय वस्तु का विरोधी

और न ही उसका लालची होता है।

आसक्ति रहित मन वाला

वह सदा मिली और न मिली

हुई वस्तु विषय को स्वीकार

कर लेता है ॥

समाधान असमाधान
हित अहित विकल्पताः ।

शून्य चित्तो न जानाति
केवल्यम इव संस्थितः ॥

शून्य चित्त वाला व्यक्ति
समस्याओं के समाधान या
असमाधान और लाभ या
हानि के जैसी कल्पनाओं
को नहीं जानता है ।
लेकिन वह ऐसे ही
स्वयं में मुक्त-रूप हो
उहरा होता है ॥

निमना निर-अंकारे

न किंचित ईत निश्चितः ।

अन्त-गलित सर्वाद्याः

कुर्वन् अपि ~~केशि~~ न म लिप्यते ॥

जिसकी अपने भीतर से

सभी आशाएँ गल कर

समाप्त हो गई हैं वह

ममता (मोह) रहित

अंकार रहित व्यक्ति

यह समझते हुये कि यहाँ यह सब

कुछ भी नहीं है

कर्म करते हुये भी

उसमें उलझ, लिपट नहीं जाता है ॥

मनः प्रकाश संतोह
 स्वप्न जाड्य विवेकितः ।
 दशाम काम अपि संप्राप्ता
 भवेत् गलित मानसः ॥

जिस व्यक्ति का मन (विचार आदि)
 गल अर्थात् समाप्त हो गया और
 जो अपने प्रकाश के प्रभाव से
 स्वप्न और जड़ अवस्था से
 रहित हो गया हो उसकी
 स्वयं को ~~प्र~~ पा लेने की दशा,
 अवस्था कैसी होगी कैसी कही
 जा सकती है ॥

सत्रहवा अध्याय समाप्त

अष्टावक्र उवाच

यस्य बौध उदये तावत्

स्वपन वत भवति भ्रमः ।

तस्मै सुख एक रूपाय

नमः शान्ताय तेजसे ॥

जिसका बौध ज्ञान हो

जाने पर भ्रम शंका

स्वपन की तरह समाप्त

हो जाते हैं उस अद्वितीय

सुख रूप शान्तमय प्रकाशमय

का नमस्कार है ॥

अर्जयित्वा अखिलान् अर्थान्
 भोगान् आप्नोति पुष्कलान् ।
 न हि सर्वं परि त्यागम्
 अन्तरेण सुखी भवेत् ॥

बहुत सारा धन कमाकर
 सभी भोगों वाली विषय
 वस्तुओं को पाकर भी
 मनः इन सब को भुलाय
 त्याग बिना भीतर से
 सुखी नहीं हो सकता ॥

कर्तव्य दुरवम आर्तण्ड ज्वाला

दग्ध अन्तर आत्मानः ।

कुतः प्रशान पीयूष धारा सारम

त्रेहते सुखम ॥

कर्तव्य (जिम्मेदारीयों) के दुरवम

से जल रही अन्तर आत्मा को

शांति रुपी अमृत की धारा

के बिना सुख कहाँ से होगा ॥

18.4

भवो अयम भावना मात्रा
 न किंचित परम अर्थतः ।
 न अस्ति अभावः स्वभावानाम्
 भाव अभाव विभावानाम् ॥

यह संसार केवल भावना
 कल्पना सपत जैसा है ।
 इसमें कुछ भी वास्तविक
 नहीं है स्थायी नहीं है ।
 क्योंकि जो चीज स्थायी
 होती है उसकी कल्पना करने
 या न करने से उसका
 अस्तित्व नहीं भिन्न होता ॥
 जैसे हमारा बौद्ध होश ॥

न दूरम न च संकोचात् लब्धम्

एव आत्मनः पदम् ।

निर-विकल्पम् निर-आयासम्

निर-विकारम् निर-अज्जनम् ॥

आत्मा का स्वरूप

न तो हमसे दूर है

न ही अपनी आँखों आँखें

बंद करने से ही मिलता है ।

आत्मा विकल्प (इच्छा) रहित है

परिभ्रम रहित है ^{चुल्लान} और

विकारों (उलझनों, दुविधाओं) रहित है

क्षेत्र रहित मैल रहित है ॥

व्या-मोह मात विरतौ

स्वरूप आकाश मातः ।

वीत शोका विराजन्ते

निर-आवरण दृष्टयः ॥

व्याप्त मोह के साथ

लगाव - रहित होते ही और

अपने स्वरूप के पाते ही

साफ स्पष्ट (बिना लाग लपेट)

दृष्टि वाले लोग

शोक - रहित विराजते हैं ।

समस्तम् कल्पना मात्रम्

आत्मा मुक्तः सनातनः ।

इति विज्ञाय धीरो हि

किम् अभ्यस्यति बालवत् ॥

समस्त संसार केवल कल्पनाओं

विचारों सेपनां जैसा है

आत्मा सदा आदि से अंत

तक मुक्त है ।

ऐसा जान कर धैर्यवान

और क्या बच्चों की

तरह अभ्यास करता है ॥

आत्मा ब्रह्म

इति निश्चित्य

भाव अभावो च कल्पितौ ।

निश्च-कामः किम विजानाति

किम ब्रूते च करोति किम् ॥

मेरी आत्मा ^{ही} और परमात्मा (ब्रह्म)

है यानि दोनों एक अभेद हैं ।

भावनाओं का होना और उनका

न-होना (अभाव) कल्पनाएँ ही हैं ।

ऐसा पक्का (निश्चित) ज्ञान लेने

वाला व्यक्त और क्या जानेगा

क्या बतायेगा और क्या करता है ॥

अयम सो अहम

अयम न अहम

इति क्षीणा विकल्पनाः ।

सर्वम आत्मा

इति निश्चित्य

तूष्णीं भूतस्य योगिनः ॥

सब कुछ आत्मा में ही है

ऐसा निश्चित (पक्का) जानकर

चुप शान्त हुए योगी की

ऐसे विचार कल्पनाएँ की

यह मैं वो हूँ

यह मैं नहीं हूँ

सब क्षीण (समाप्त) हो जाती है ॥

न विक्षेपो न च शकाग्रयम

न अति बौद्धो न मूढता ।

न सुखम न च वा दुःखम

उपशान्तरस्य योगिनः ॥

शान्ति शांति को प्राप्त योगी

की न शकाग्रता (किसी वस्तु विशेष में)

है न अटकाव (किसी विषय में) है।

न उसे बहुत जाबकारी (वस्तुओं की)

है न वह अज्ञानी मूढ़ है।

न उसे दुःख है न सुख है।

वह अति शान्त है ॥

स्वराज्ये भैक्ष्य वृत्तौ च
 लाभ-अलाभे जने वने ।
 निर-विकल्प स्वभावस्य
 न विशेषो अस्ति योगिनः ॥

निर-विकल्प (इच्छा, चुनाव रहित)
 स्वभाव वाले योगी कौड़े के
 लिए कुछ भी स्वास विशेष
 नहीं पाए वह राज्य पलाय
 पाए भिक्षा ^{अपनी} मांगता है
 चाहे वह लाभ में हो या हानि में
 चाहे वह भीड़ में रहता हो
 या अकेले वन जंगल में ॥

18-12

ॐ धामः ॐ च वा कामः इ
ॐ च अर्थः ॐ विवेकिता ।

इदम कृतम इदम न

इति. द्वन्द्वः मुक्तस्य योगिनः ॥

u

यह काम कर लिया है

यह काम नहीं हुआ है "

ऐसे द्वन्द्व की विधाओं से

मुक्त योगी को

कहा धाम है कहा काम है

कहा अर्थ और कहा विवेक है ॥

कृत्यम् किम् अपि न ख अस्ति
न का अपि हृदि रंजना ।

यथा जीवनम् ख इह
जीवन मुक्तस्य योगिनः ॥

जीवन से मुक्त योगी के लिए
कुछ भी काम कर्तव्य जैसा नहीं
न ही उसके दिल में कोई रंजना है।
उसके लिए जीवन जैसा है
वैसा ही है ॥

18.14

क्व माहः क्व च वा विश्वम्
क्व तत् ध्यानम् क्व मुक्तता ।
सर्व संकल्प सीतायाम्
विज्ञान्तस्य महात्मनः ॥

सभी संकल्पो इरादो के अंत
पर पहुँच कर उत्तरे हार
कर पूर्ण रूप से ब्रात
हुरे महान पुरुष के लिख
अब कहाँ लालच कहाँ संसार
कहाँ प्रभु का ध्यान और
कहाँ मुक्ति की चाहत ॥

18.15

येन विश्वम इयम द्रष्टुम
स न अस्ति इति करोतु वै ।
निश्वासनः किम कुरुते
पश्यन्न अपि न पश्यति ॥

जिसको यह संसार ही नजर
आता है वही कोशिश करता
है कि वह संसार से छूट
जाये लेकिन वह वासना रहित
व्यक्ति क्या कोशिश करेगा जो
संसार को देखते हुये भी
नहीं देखता है ॥

18.16

येन ब्रह्म परम ब्रह्म
सो अहम् ब्रह्म इति चिन्तयेत् ।
किम् चिन्तयति निश्चिन्तो
द्वितीयम् यो न पश्यति ॥

जिसको परम ब्रह्म ही नजर
आते हैं वही यह चिंतन
करता है कि मैं ब्रह्म हूँ ।
लेकिन वो चिंता-रहित व्यक्ति
क्या चिंतन करेगा जिसको
यहाँ दूसरा कोई नजर ही
नहीं आता ।

18.17

दृष्टो येन आत्म विज्ञेया
निरोधम कुरुते तु असौ ।

उद्धारः तु न विक्षिप्तः
साध्य अभवात् करोति किम् ॥

जिसका आत्मा में कोई रुकावट
नजर आती है वह उसे
हटाने से कने की कोशिश
करता है लेकिन उदार सरल
चित्त वाला व्यक्ति जो विक्षिप्त
नहीं जिसे कोई उलझन नहीं
वह लक्ष्य न होने पर
क्या प्रयास करे ॥

धीरो लोक-विषय-अस्तो
 वर्तमानो अपि लोकवत् ।
 न समाधिं न विद्वेषम
 न लेपम स्व-अस्य पश्यति ॥

धैर्यवान् लोगों में संसार में
 उलझा हुआ नहीं होता मगर
 लोगों जैसा लगता हुआ भी
 न अपनी समाधि को
 न बाहरी भटकाव को
 न लगाव उलझनों को
 अपने में देखता है ॥

भाव अभाव विहीनो

यो तृप्तो

निर-वासनो बुधः ।

न ख किञ्चित् कृतम

तेन लोक दृष्ट्या विकुर्वता ॥

भावनाओं और निर-भावनाओं रहित

जो संतुष्ट है तृप्त है

वह वासना-रहित ही जानी है ।

लोगों की दृष्टि में उसके

द्वारा किये हुए काम भी

वास्तव में कुछ भी नहीं किया गया है ॥

^{११}प्रवृत्ती वा ^{११}निवृत्ती वा
 न ख धीरस्य दुर्ग्रहः ।
 यदा यत् कर्तुम् आयाति
 ततः कृत्वा
 तिष्ठते सुखम् ॥

^{११}धैर्यवान् व्यक्ति का किसी
 काम को करने अथवा उसे
 भाग्य का कोई आग्रह (हिठ)
 नहीं होता है ।
 जब कभी जो काम करने का
 आनन्द पड़ता है वह उसे
 करके आराम से बैठ जाता है ॥

निर-वासनो निर-आलम्बः

स्वच्छन्दो मुक्त बन्धनः ।

क्षिप्तः संसार वातेन

च्युतते शुष्क पर्णवत् ॥

वासना (इच्छा) रहित

आलम्ब (सहारा) रहित

स्व-इच्छा-चारी

बन्धन मुक्त व्यक्ति

संसार रूपी पवन द्वारा प्रेरित

सखे पते की तरह

च्युता (कौशिक्षा) करता है ।

असंसारस्य तु न्व अपि
 न ह्यो न विषादता ।
 स शीतल मना नित्यम
 विदेह इव राजते ॥

असंसारी (जिसेके भीतर संसार नहीं है)
 को न तो कभी हर्ष है
 और न ही कभी विषाद (दुख परेशानी) है
 वह शीतल मन वाला हमेशा
 विदेह (जिसका अपनी देह से संबंध टूट गया)
 की तरह शोभायमान होता है ॥

कुत अपि न जिहासा अस्ति
आशा वा अपि न कुतचित् ।

आत्मा रामस्य धीरस्य
शीतल आच्छतर आत्मनः ॥

अपने आप में (आत्मा में) रमणे (खुश)
वाले शीतल और साफ मन वाले
धैर्यवान को कहीं भी कुछ भी
त्यागन छोड़ने की इच्छा नहीं है और
न ही कहीं किसी से कोई भी
आशा उम्मीद है ॥

प्रकृत्या शून्य चित्तस्य

कुर्वते अस्य यदृ-दृष्ट्या ।

माकृतस्य स्व इव धीरस्य

न भानो न अवमानता ॥

प्रकृति स्वभाव से शून्य-चित्त
वाला व्यक्ति सब काम उसकी
(पारब्ध की) दृष्टि से करता है।
लेकिन वह आम प्रकृति स्वभाव से
बंधे व्यक्ति की तरह ही करता
है लेकिन उस व्ययवान व्यक्ति
को इन सब कामों में मान सम्मान
और अपमान की कोई दृष्टि फिक्र
नहीं होती है ॥

कृतम^१ देह^२न कम^३ इदम^४
 न मया शुद्ध-रूपिणा ।
 इति चिन्ता-अनुरोधी यः
 कुर्वन् अपि करोति न ॥

यह कम^३ आदि शरीर द्वारा
 किये गये हैं न कि मुक्ष
 रूप शुद्ध रूप आत्मा द्वारा ।
 ऐसे चिन्तन विचार का
 भानन वाला जो व्यक्ति है
 वह कम^३ करते हुए भी उसे
 नहीं करता ॥

अतश्चादी इव कुरुते
 न भवेत् अपि वालिशाः ।
 जीवन-मुक्तः सुखी श्रीमान्
 संसरन्न अपि शोभते ॥

आम संसारी व्यक्ति की तरह
 काम करते हुये भी जीवन-मुक्त
 भूख नहीं हो जाता है ।
 वह श्रीमान् (सम्मानित व्यक्ति)
 सुखी होकर हर काम करे
 व्यवहार करते हुये शोभायमान
 होता है ॥

नाना विचार सुश्रान्ते
 धीरो विस्त्रान्तिम आगतः ।
 न कल्पते न जानाति
 न मृणोति न पश्यति ॥

कई प्रकार के विचारों
 से थक कर जो धैर्यवान्
 शान्ति को उपलब्ध होता है ।
 वह फिर कल्पना नहीं करता
 वह कुछ जानता नहीं
 कुछ सुनता नहीं
 कुछ देखता नहीं ॥

असमाधिः अविक्षेपात्

त मुमुक्षुः न च इतरः ।

निश्चित्य कल्पितम् पश्यन्

ब्रह्म ख आस्ते महाशयः ॥

समुद्र की तरह महाशांत व्यक्ति

समाधि रहित विक्षेप रहित

होने के कारण त मुमुक्षु

होता है न ही कुछ और ।

वह पक्के तौर पर संसार

को कल्पना स्वप्न की तरह

देखते हुए ब्रह्म जैसे अपने

में ठहरा रहता है ॥

यस्यः अन्तः स्यात् अहंकारो

न करोति करोति सः ।

निर-अहंकार धीरेण

न. किञ्चित् अकृतम कृतम ॥

जिसके अंदर अहंकार (कर्त्तापन) हो

वह कुछ न करता हुआ भी

कर्त्ता बना रहता है ।

अहंकार-रहित (जिसमें कर्त्तापन नहीं)

धैरवान व्यक्ति के लिए

कुछ भी किया हुआ या

नहीं किया हुआ है ॥

न उद्विग्नम न च संतुष्टम्
कृतं स्पन्दं वजितम् ।

निर-आशम गत-संदेहम्
चित्तम् मुक्तस्य राजते ॥

मुक्त जो न उद्विग्न (द्वेष, विचलित) है
और न संतुष्ट है और जिसमें
कृतापत्त आदि प्रतिक्रियाएँ नहीं हैं।

ऐसे आशा-रहित संदेह-रहित

मुक्त व्यक्ति का चित्त

शांति से विराजता है ॥

निर-ध्यातुम चेष्टितुम वा अपि
यत् चित्तम न प्रवर्तते ।

निर-निमित्तम इक्षम किन्तु,
निर-ध्यायति विचेष्टते ॥

जो जो चित्त न ध्यान (शांत होने को)
और न ही कोशिशों (कुछ पाने को)
में इच्छुक प्रवृत्त होता है ।
वह बिना निमित्त कारण के
बिना ध्यान के लक्ष्य के
भी बहुत कोशिशें करता है ॥

तत्त्वम् यथायम् आकर्ण्य
 मन्दः प्राप्नोति मूढताम् ।
 अथवा आयाति संकोचम्
 अमूढः को अपि मूढवत् ॥

मन्द बुद्धि वाला व्यक्ति
 तत्त्व को यथाय वास्तविकता को
 सुनकर भी मूढता को ही
 प्राप्त होता है । लेकिन
 मूढता-रहित व्यक्ति (ज्ञानी)
 मूढ की तरह व्यवहार करने
 पर भी समाधि को ही
 प्राप्त होता है ॥

एकाग्रता निरोधो वा
मदः अभ्यस्यते भृशम् ।
धीराः कृत्स्नम् न पश्यन्ति
सुप्तवत स्वपदे स्थिताः ॥

किसी विषय वस्तु को पान
 में उससे बचते उसे रोकने
 के लिए मूर्ख लोग बहुत
 अभ्यास करते हैं । लेकिन
 धैर्यवान लोग किये हुए कर्मों
 को फिर नहीं देखते । वह
 सोयें हुए की तरह शांत
 होकर अपने आप में ठहर
 रहते हैं ॥

अप्रयत्नात् प्रयत्नात् वा
 मूढो न आप्नोति निर्वृतिम् ।
 तत्त्वं निश्चय मात्रेण
 भासो भवति निर्वृतः ॥

मूर्ख व्यक्ति न तो बहुत
 कोशिश करके न ही सब
 कुछ छोड़ कर ही मुक्त
 होता है । लेकिन उस परम
 तत्त्व के बोध मात्र से
 ही होशमंद होकर व्यक्ति
 मुक्त हो जाता है ॥

शुद्धम बुद्धम प्रियम
 पूर्णम निर-प्रपंचम निर-आमयम ।
 आत्मातम तम न जानन्ति
 तत अभ्यास-परा जनाः ॥

संसार में जो लोग बहुत
 साधना अभ्यास नियम व्रत
 आदि में लगे हैं वो अपनी
 आत्मा को नहीं जान पाते जो
 शुद्ध दाग-रहित है
 बोध रूप है प्रिय जैसा है
 पूर्ण है प्रपंच (अनित्य) की लक्ष्मण
 तरह नहीं है बल्कि नित्य सनातन
 है और प्रयास-रहित है ॥

न आत्तोति कर्मणा मोक्षम

विमूढो अभ्यास रूपिणा ।

धन्यो विज्ञान मोक्षेण मुक्तः

तिष्ठति अविक्रियः ॥

अति मूढ़ मूर्ख अज्ञानी व्यक्ति

अभ्यास नियम ब्रत जैसे

कर्मों द्वारा कभी भी मोक्ष

को मुक्ति को प्राप्त नहीं होता ।

पर ~~मैं~~ कोई भाग्यवान धन्य व्यक्ति

केवल बोध रूपी ज्ञान को

ज्ञान समझ लेता और से ही

मुक्त होकर क्रिया-रहित आराम

को उपलब्ध हो जाता है ॥

मूढो न आप्नोति तत ब्रह्म
 यतो भवितुमश्नोति ।
 अन-श्नोन्न अपि धीरो
 हि पर-ब्रह्म स्वरूपभाक् ॥

मूर्ख अज्ञानी उस ब्रह्म (परम-आत्मा)
 को नहीं प्राप्त होता जबकि वह
 ब्रह्म होने की इच्छा भी करता है ।
 मगर धैरवान् धीरज्ज् वाला व्यक्ति
 परम ब्रह्म की इच्छा चाह न
 रखते हुये भी अपने परम ब्रह्म
 स्वरूप में आ जाता है ॥

निर-आधारा ग्रह-व्यवस्था

मूढ़ाः संसार पौलकाः ।

रतरुय अनर्थ मूलरुय

मूलच्छेदः कृते बुधै ॥

आधार रहित पूर्व ग्रहों

विचारों से ग्रसित मूर्ख

लोग ही इस संसार को

चलाने वाले हैं ।

इस संसार की अर्थहीनता

के मूल कारण अज्ञान का

नाश ज्ञानीयों द्वारा ही

किया जाता है ॥

न शान्तिम लभते मूढा
 यतः शमितुम इच्छति ।
 धीरः तत्त्वम विनिश्चित्य
 सर्वदा शान्त मानसः ॥

मूर्ख व्यक्ति शान्ति को कभी
 प्राप्त नहीं होता जबकि वह
 शान्ति के लिए कौशिका इच्छा
 भी करता है।

धीरज वाला व्यक्ति उस तत्त्व
 ज्ञान को निश्चय करके पक्के
 तौर पर समझ कर सदा ही
 शान्त मन वाला हो जाता है ॥

क्व आत्मनो दशनम् तस्य
 यत् अवलम्ब्य दृष्टम् अवलम्बते ।
 धीराः तम् तम् न पश्यन्ति
 पश्यन्ति आत्मानम् अव्ययम् ॥

उस व्यक्ति को आत्मा का
 दशन कहाँ कैसे हो सकता है
 जो दृष्ट (आँखों से दिखने वाली
 विषय वस्तु) को ही आधार मानता
 है ।

अथवा न व्यक्ति आँखों से दिखने
 वाली चीजों को नहीं देखते बल्कि
 वह कभी न स्वप्न न स्वप्न होत
 वाली आत्मा को ही देखते हैं ॥

वव निरोधो विमूढस्य
यो निबन्धम करोति वै ।

स्वरागस्य स्व धीरस्य
सर्वदा असौ अकृत्रिमः ॥

उस मूर्ख ~~मूढ~~ अविवेक-रहित
व्यक्ति का मन कहाँ कैसे
रुक सकता है जो मन को
हठ से रोकने के यत्न प्रयास
करता है ।

अपने आप में ही रमण रहने वाले
धैरवान व्यक्ति का मन सदा
ही स्वभाव से सहजता से
रुक जाता है ॥

भावस्य भावकः कश्चित्
न किंचित् भावको अपरः ।

उभय अभावकः कश्चित्
यवम् यव निर-अकुलः ॥

कोई भावनाओं को महसूस
करता है उनको सच मानता है
कोई मानता है कि कोई
भावना जादू नहीं है सब
झूठ है ।

कोई दोना को नहीं मानते
समझते हुए (कि न कुछ सच
है न झूठ है) ऐसे ही शान्त
व्याकुलता रहित रहता है ॥

शुद्धम अक्षयम आत्मानम

भावयन्ति कुबुद्धयः ।

न तु जानन्ति समोहात्

यावज्जीवम अनिरवृताः ॥

कुलीन मन्द बुद्धिवाले लोग

शुद्ध साफ दाग-रहित

एक अक्षत आत्मा को केवल

भाव खयाल करते हैं मगर

अपनी ही अज्ञानता के कारण

आत्मा को जान नहीं पाते और

जीवन भर उनकी दुखों दुविधाओं

से निवृत्ति झुटकारा नहीं होता ॥

18.44

मुमुक्षु ब्रह्मः आलम्बन
अन्तरेण न विद्यते ।
निर-अलम्बा स्व निष्-कामा
ब्रह्म मुक्तस्य सर्वदा ॥

मुमुक्षु (मोक्ष मुक्ति चाहने वाला)
की ब्रह्म बिना किसी आधार
सहारे के टिकती नहीं । मगर
मुक्त व्यक्ति की ब्रह्म सदा
ही आधार सहारे के बिना
और कामना इच्छा-रहित होती है ॥

विषय द्वीपिता वीक्ष्य वीक्ष्य

चकिताः शरण-अर्धिनः ।

विशान्तिं शीघ्रं क्रौडम्

निरोधै-रकाग्र्यं सिद्धये ॥

विषय रूपी बाध (खतरनाक जानवर)

को सामने देखकर हैरान और

भयभीत होकर अपने को बचाने

के लिए शरण आसरा ढूँढ़ने

वाला जल्दी से अपने मन

को रोकने रकाग्र करने के

लिए किसी रकांत जगह भुका

आदि में चुस कर बैठ जाता है ॥

निर-वासनम हरिम् दृष्ट्वा
 तूष्णीम् विषयं कर्तुः ।
 पलायन्ते न शक्ताः
 ते - सेवन्ते कृतचातवः ॥

वासना इच्छा रहित सिंह रूपी
 व्यक्ति को देखकर विषय
 वासना रूपी हाथी चुपचाप
 उससे दूर भागता है अथवा
 नहीं तो असमर्थ कमजोर
 उसे उसकी चातूकारों की
 तरह सेवा करते हैं ॥

न मुक्ति कारिकाम ध्येत्

निःशङ्को युक्त-मानसः ।

पश्यन् शृण्वन् स्पृशन्

जिघ्रन् अनन

आस्ते यथा सुखम् ॥

शंका संदेह रहित संतुलित

मन वाला व्यक्ति मुक्ति

के कर्म (नियम, व्रत आदि)

हठ से आग्रह से नहीं करता

या अपने ऊपर धारता ओढ़ता ।

बढ़ देखते हुए सुनते छूते

सूँघते खाते हुए सब कर्म

सुख से आराम से करता है ॥

वस्तु श्रवण मात्रेण

शुद्ध बुद्धिः निर-अकुलः ।

न ख आचारम अनाचारम
आदास्यम वा प्रपश्यति ॥

वस्तु (परम तत्त्व ज्ञान) को

सुनने भर से शुद्ध बुद्धि

और व्याकुलता रहित शांत

हुआ व्यक्ति न आचरण

को न अनाचरण (अशुभ)

को और न ही उदासीनता

(शुभ अशुभ से दूर उदास)

को विशेष अलग देखता

समझता मानता है ॥

यदा यत कर्तुम आयाति
तदा तत कुरुते तद्वजुः ।

शुभम् वा अपि
अशुभम् वा अपि
तस्य चेष्टा हि बालवत् ॥

तद्वजु (अपेक्षाओं इच्छाओं रहित व्यक्तित्व)
जब जैसा काम करने को सामन
आ पड़े वह उसे करता है चाहे
वह काम शुभ हो अथवा अशुभ ।
उसकी सारी कोशिशें चेष्टाएँ
कम बच्चे जैसी होती हैं जो
शुभ अशुभ से परे होती हैं ॥

स्वातन्त्र्यात् सुखम् आप्नोति

स्वातन्त्र्यात् लभते परम् ।

स्वातन्त्र्यात् निवृत्तिम् भवत्येव

स्वातन्त्र्यात् परमम् पदम् ॥

विषया कामनायां कर्तव्या अहंकार

सै स्वातन्त्र्यं आजाय द्यूतकर ही

व्यक्ति सर्व को प्राप्त होता है

ज्ञान को पाता है

निर-वृत्ति मुक्ति को पाता है ।

मुक्त होकर ही परम पद

प्राप्ति अपने आत्म स्वरूप

को समझता है प्राप्त होता है ॥

अकृतत्वम अकृतत्वम अभोक्तृत्वम
 स्वआत्मनो मन्यते यदा ।
 तदा क्षीणा भवन्ति स्व
 समस्तः चित्त वृत्तयः ॥

जब मनुष्य अपनी आत्मा के
 अकृता अभोक्ता होने को
 समझता है मानता है
 तब उसके मन चित्त की
 सारी वृत्तियाँ कुविचार इच्छाएँ
 रूचियाँ क्षीण समाप्त स्वप्न
 हो जाती हैं ॥

उच्छेद-रवला अपि आकृतिका
 स्थितिः धीरस्य राजते ।
 न तु संस्पृष्ट चित्तस्य
 शान्तिः मूढस्य कृत्रिमा ॥

धैर्यवान् अपने में ठहर रहे
 व्यक्ति की चंचलता भी
 स्वभाविक है और शोभती
 है अच्छी लगती है ।

मगर वासना-युक्त इच्छा से
 भरे चित्त वाले मूर्ख व्यक्ति
 की शान्ति भी बनावटी
 साध्या हुई थोपी आरोपित
 लगती है ॥

विलसन्ति महाभोगः
 विव्रान्ति गिरिगह्विरान् ।
 निरस्त कल्पना धीरा
 अवस्था मुक्त बुद्धयः ॥

जिस धीरु वाल व्यक्ति की
 सब कल्पनाएँ इच्छाएँ खत्म हो
 गई जो बन्धन मुक्त है और
 मुक्ति मुक्त बुद्धि वाला है ।
 ऐसे व्यक्ति कभी समय आने
 पर उत्तम भोगों से वंचित ~~नहीं~~ को
 भोगत है जानें मनात है तो
 कभी संकट में पहाड़ की
 मुफाओं में भी चले जात है ॥

18.54

श्रोत्रियम् देवताम् तीर्थम्
अंगनाम् भूपतिम् प्रियम् ।
दृष्ट्वा संपूज्य धीरस्य
न का अपि हृदि वासना ॥

शास्त्रों के ज्ञाता विद्वान् पंडित
देवता पूजनीय व्यक्ति और
तीर्थों का पूजकर आदर करके
अथवा स्त्री राजा या प्रिय
व्यक्ति को देखकर भी
धीरज धैरवान् व्यक्ति के
दिल में कोई भी वासना
अकांक्षा इच्छा नहीं होती ॥

^{२१}भृत्यः ^{२१}पुत्रः ^{२१}कलत्रः च
^{२१}दोहित्रः च अपि ^{२१}गोत्रजः ।
 विरस्य धिक्कृतो योगी
 न याति विकृतिम मनाक् ॥

योगी (जो समस्त को जोड़ता है)
 नौकरों पुत्रों स्त्रियों और
 नातियों और सम्बन्धियों
 द्वारा धिक्कारे अपमानित उपहासित
 किये जाने पर भी
 जरा भी विकार क्रोध प्रतिक्रिया
 को प्राप्त नहीं होता ॥

संतुष्टो अपि न संतुष्टः
 खिन्नो अपि न च खिद्यते ।
 तस्य आश्रयं दशाम ताम ताम
 तादृशां खं जानते ॥

जो संतुष्ट होत हूँ भी
 संतुष्ट न हो और खिद्यते
 हूँ भी न खिद्ये उसकी
 इस हँसन करने वाली दशा
 का वही जान सकता है
 जो उसके जैसा हो ॥

कर्तव्यता एवं संसारो

न ताम पश्यन्ति सूरयः ।

शून्य-अकारा निर-अकारा

निर-अकार-विकारा निर-आमयाः ॥

कर्तव्य का भाव ही संसार है ।

यह काम करता चाहिय यह
नहीं करता चाहिय ऐसे नियम
आदि ही संसार हैं ।

मुक्त जानी जो इस कर्तव्यता

आदि को नहीं देखते क्योंकि

वह शून्य-आकार विकार-रहित

परिष्कृत-रहित व रूप-आकार-रहित

होते हैं ॥

अकुर्वन् अपि संश्रुभात
 व्यग्रः सर्वत्र मूढधीः ।
 कुर्वन् अपि तु कृत्यानि
 कुशलो हि निर-आकुलः ॥

मूढ़ बुद्धि वाला कुछ न
 करता हुआ भी क्रोध होम
 के कारण सब जगह परेशान
 उग्र विचलित होता है । मगर
 कुशल पूर्ण व्यक्ति सब
 कामों को करता हुआ भी
 निर-आकुल शान्त रहता है ॥

सुखम आस्ते सुखम शेते
 सुखम आयाति याति च ।
 सुखम वान्त सुखम भुङ्क्ते
 व्यवहारे अपि शान्तधीः ॥

शांत बुद्धि वाला व्यक्ति
 सुख से आराम से बैठता है
 लेटता साता है आराम से कहीं
 आता और जाता है ।
 वह शांति आराम से बालता है
 आराम से खाता है और
 दूसरों से व्यवहार में आराम
 से पेश आता है ॥

स्वभावात् यस्य न स्व
आर्तिं लोकवत् व्यवहारिणः ।

महाहृदं इव अक्षौभ्यो
गत-क्लेशः सुशोभते ॥

जो व्यक्ति स्वभाव से ही
दुसरे (लोगों) जैसा व्यवहार
काम आदि करके भी कुखी
परेशान नहीं होता वह महान
सागर की तरह क्रोध-रहित
क्लेश-रहित शोभायमान होता
है शोभा पाता है ॥

निवृत्ति अपि मूढस्य

प्रवृत्ति उप-जायते ।

प्रवृत्ति अपि धीरस्य

निवृत्ति फल दायिनी ॥

मरव व्यक्ति की किसी विषय वस्तु
से निवृत्ति मुक्ति भी किसी ओर
प्रवृत्ति कन्धन या राग को जन्म देती है।
धैर्यवान् व्यक्ति का किसी विषय
वस्तु से लगाव रुचि भी उसकी
निवृत्ति मुक्ति-रूपी फल को देती है ॥

18. 62

परिग्रहेषु वैराग्यम्
प्राप्य मूढस्य दृश्यते ।
देह विगलित आशस्य
क्व रागः क्व विरागता ॥

अक्सर मूर्ख को घर आदि
को छोड़ने में ही वैराग्य
नजर आता है । मगर
जिस व्यक्ति को अपने
शरीर में सभी आशाएं
गल गड़ समाप्त हो गई
उसके लिए कहाँ राग
और कहाँ विरागता ॥
(वैराग्य)

भावता अभावता आसक्तता

कृष्टिः मूढस्य सर्वदा ।

भाव्यः अभावतया सा तु
स्वस्थस्य अकृष्टि रूपिणी ॥

मूर्ख व्यक्ति की नजर हमेशा
विषय वस्तुओं को मानने या
न मानने में उलझी रहती
है । लेकिन स्वस्थ व्यक्ति
जो अपने में ठहरा हुआ है
उसकी नजर विषय वस्तुओं को
मानने या न मानने से परे
अदृश्य होती है ॥

18-64

सर्व आरम्भेषु निष्कामौ

यः चरेत् बालवत् मुनिः ।

न लेपः तस्य शुद्धस्य

क्रियमाणे अपि कर्माणि ॥

जो मुनि (मौन शांत व्यक्ति)

सब कामों कर्मों के शुरू में

ही बच्चों की तरह कामना

रहित होता है । उस शुद्ध साफ

व्यक्ति को किये हुए

कर्मों में भी कोई लेप

रूचि या मोह नहीं होता ॥

स एव धन्यः आत्मज्ञः

सर्वं भावेष्टु यः समः ।

पश्यन् शृण्वन् स्पृशन्

गिघ्रन् अश्नन्

निर-तृष मातसः ॥

वह आत्म ज्ञानी ही धन्य है

भाग्यवाली है जो देखते हुए

सुनते हुए छूते हुए संघते हुए

खाते हुए तृषणा इच्छा रहित

मन वाला सभी भावों में

कामों में समान दृष्टि समान

भाव वाला रहता है ।

18.66

क्व संसारः क्व च आभासः

क्व साध्यम् क्व च साधनम् ।

आकाशस्य इव धीरस्य

मिर विकल्पस्य सर्वदा ॥

सदा आकाश की तरह

विकल्प इच्छा रहित

धैरवान व्यक्ति के लिए

कहाँ संसार कहाँ उसकी प्रतीति

कहाँ लक्ष्य कहाँ उसकी साधना

स जयाति अर्थ संन्यासी

पूर्ण स्वरस विग्रहः ।

अकृत्रिमो अनव-दिने

समाधिः यस्य वर्तते ॥

वही व्यक्त सही अर्थ में विजयी

संन्यासी है जो पूर्ण रूप से

पूरी तरह अपने स्वरस आत्मरस

में से परिपूर्ण है भरा है ।

और जिसकी समाधि सहज है

स्वभाव से है और तत्त्व

निरंतर है सदा है ॥

18-68

बहुता अतः किम उक्तेन
ज्ञात तत्त्वो महाशयः ।
भोग - मोक्ष निर-अकाङ्क्षी
सदा सर्वतः नी-रसः ॥

यहाँ बहुत कहने से क्या
प्रयोजन मतलब या फायदा
उस तत्त्व का ज्ञाता महान
व्यक्ति सदा हर जगह
भोग और मोक्ष की
इच्छा अकाङ्क्षा न रखता
हुआ रस राग या रूचि
रहित रहता है ॥

महत आदि जगत द्वैतम्
 नाम मात विजृम्भितम् ।
 विहाय शुद्ध बोधस्य
 किम् कृत्यम् अवशिष्यते ॥

यह चारों तरफ फैला हुआ संसार
 जो कई भागों में बँटा लगता है
 केवल नाम रूप और रंग में ही
 एक दूसरे से भिन्न या अलग है।
 इस भिन्नता अलगाव द्वैत को
 छोड़ देन पर शुद्ध साफ बोध
 वाले व्यक्ति को और नया
 करने के लिए बाकी रहता है ॥

18.70

भ्रम भूतम इदम सर्वम
किंचित न अस्ति ।

इति निश्चयी

अलक्ष्य स्फुरणः शुद्धः
स्वभावेन एव शान्ति ॥

यहाँ सब कुछ भूत की तरह
भ्रम वहम जैसा ही है कुछ
भी पक्का नहीं है । ऐसा पक्का
जानने समझने वाला बिना किसी
लक्ष्य के शुद्ध स्पष्ट सहज
व्यक्ति अपने आप स्वभाव
से ही शान्त हो जाता है ॥

शुद्ध स्फुरण रूपस्य

द्वय भावम अपश्यतः ।

क्व विधिः क्व च वैराग्यम

क्व त्यागः क्व शान्तिरपि वा ॥

दिव्य देव वाली विषय वस्तुओं
 में से उठने वाले भावों विचारों
 को न देखने वाले शुद्ध साफ
 स्पष्ट स्व-स्फुरण से जीने वाले
 व्यक्ति के लिए कहाँ काम की
 विधि तरीका और कहाँ किसी से
 वैराग्य उदासीनता और कहाँ किसी
 का त्याग और कहाँ शान्ति होने
 की अवश्यकता ॥

18.72

स्फुरतो अतन्त रूपेण

प्रकृतिम च न पश्यतः ।

क्व बन्धः क्व च वा मोक्षः

क्व हर्षः क्व विषादितः ॥

जो व्यक्ति सहज स्फुरणा से

जीता है और जो इस अनंत

रूप रंगों में फैली प्रकृति

को नहीं देखता उसके लिए

कहाँ बन्धन और कहाँ मुक्ति

कहाँ खुशी और कहाँ दुख ॥

बुद्धि पर्यन्त संसार
 माया मात्रम विवर्तते ।
 निर्ममो निर्हंकारो निष्कामः
 शोभते बुधः ॥

बुद्धि मन से चलने वाले
 संसार में सिर्फ माया झूठ
 ही चलता है ।
 लेकिन बौद्ध होश से चलने
 जीने वाले ममता रहित
 अहंकार रहित इच्छा रहित
 व्यक्ति ही संसार में
 शोभा पाते हैं ॥

अक्षयम गत-संतापम

आत्मानम पश्यतो मुनेः ।

क्व विद्या च क्व वा विश्वम

क्व देहो अहम मन इति वा ॥

अक्षय (कभी खत्म नाश न होने वाली)

संताप रहित दुःख रहित

आत्मा को देखने वाले

मुनि (मौन शांत रहने वाला)

को कहाँ विद्या कहाँ यह

संसार और उसके लिए कहाँ शरीर

कहाँ मैं या मेरे का भाव

विचार ॥

निरोध - आदीनि कर्माणि
 जहाति जडधीः ययि ।
 मनोरथान प्रलापान च
 कर्तुम आप्नोति तत्क्षणात् ॥

ययि कोई जड़ बुद्धि वाला
 व्यक्ति मन को रोकने या
 बाधने वाल कामों को शिरो
 को छोड़ भी दे तो उसी
 समय वह इस छोड़ने से
 दान वाले लाभ के बारे
 में बात करना शुरू कर
 देता है ॥

मन्यः श्रुत्वा अपि तत्-वस्तु
 न जहाति विमूढताम् ।
 निर-विकल्पो वै हि यत्नात्
 अन्तः विषय लालसः ॥

मन्य व्यक्ति वाला मूर्ख व्यक्ति
 उस वस्तु (आत्मा) के
 बारे में सनकर भी मूर्खता
 को नहीं छोड़ता ।

वह बाहर बाहर बड़े यत्न
 अभ्यास से इच्छा रहित हुआ
 दिखता है मगर उसके भीतर
 अंदर विषय वस्तुओं की लालसा
 इच्छा काममें बनी रहती है ॥

ज्ञानात् गालित कमा यो
 लोक दुष्टया अपि कृतकृतः ।
 न आप्नोति अवसरम्
 कर्तुम् वक्तुम् श्व न किञ्चन ॥

आत्म ज्ञान से जिसके सब
 कर्म गल गये मिट गये हो
 वह लोगों की तजरो में कम
 भी करता है हुआ दिखाने
 पड़ता है । मगर वास्तव में
 उसे कुछ भी करने या
 कहने का अवसर या जरूरत
 नहीं पड़ती ॥

क्व तमः क्व प्रकाशः

वा हिनमः क्व च

न किञ्चन ।

निर-विकारस्य धीरस्य

निर-अतंकस्य सर्वदा ॥

सदा भय-रहित विकार (उलझनें
कुविधाएँ) रहित धैर्यवान

व्यक्ति के लिए कहाँ

अंधरा कहाँ प्रकाश है और

कहाँ किसी का त्याग कहाँ

कोई उसके लिए सब

रक जैसे हो जाते हैं ॥

क्व ध्येयं क्व विवेकित्वम्
क्व निर-अतंकता अपि वा ।

अनिरवाच्य - स्वभावस्य

निः - स्वभावस्य योगिनः ॥

स्वभाव - रहित या अनिवचनीय

स्वभाव (जिसे स्वभाव गुणों का

वर्णन शब्दों से न किया जा सके)

वाले योगी के लिए कहाँ

ध्येय है कहाँ विवेकता है और

कहाँ निश्चयता भी है । अर्थात्

उसके लिए सब विभाजन

उपाधियाँ गुण आदि स्वप्न हैं

जाते हैं ॥

न स्वर्गो न च नरको
 जीवन मुक्ति न च स्व हि ।
 बहुता अत्र किम उच्यते
 योगः कृत्वा न किंचन ॥

न कही कोई स्वर्ग है
 न ही नरक नरक है
 और न ही कही कोई
 जीवन मुक्ति ही है ।
 इसमें यहाँ ज्यादा कुछ
 करने का क्या अप है
 योग (समस्त जीवन संसार को
 एक जानना) की दृष्टि में
 यह संसार कुछ भी नहीं है ॥

न ख प्रार्थयते लाभम्
 न अलाभेन अनु-शौचति ।
 धीरस्य शीतलम चित्तम्
 अमृतेन ख पूरितम् ॥

न ही वह किसी लाभ या
 फायदे के लिए प्रार्थना याचना
 करता है न ही कोई अलाभ
 नुकसान के कारण उसके बारे
 में शोक विचार करता है ।
 ध्येवान व्यक्ति का वै शीतल
 शांत चित्त मन अमृत (ज्ञान का
 बोध का निरंतर अनुभव आनंद)
 से सदा परिपूर्ण भरा रहता है ॥

न शान्तम स्तौति निष्कामो
न दुष्टम अपि निन्दति ।

समं कुरु सुखः तृप्तः

किञ्चित् कृत्स्नं न पश्यति ॥

कामना इच्छा रहित व्यक्ति
न किसी शान्त व्यक्ति की
प्रशंसा करता है और न
किसी दुष्ट बुरे व्यक्ति
की निंदा आलोचना करता है ।

सुख कुरु में एक भाव से
तृप्त संतुष्ट व्यक्ति किसी भी
किये हुए कर्म काम को पीछे
मुड़ कर नहीं देखता ॥

धीरो न क्षीति संसारम्
 आत्मातम न दिक्क्षति ।
 ह्ये अमथ विनिमुक्तो
 न मृतो न च जीवति ॥

धैर्यवान व्यक्त न तो
 संसार को नफरत की
 नजर से देखता है न
 ही आत्मा को खास
 नजर से देखता है ।
 खुशी और गमी की उलझन
 से छूटा हुआ वह न मरता
 है न जीता है ॥

निः स्नेहः पुत्र-दार-आदी
 निष्कामो विषयेषु च ।
 निश्-चिन्तः स्वशरीरे अपि
 निर-आशः शोभते बुधः ॥

बुध यानि बौध पूर्ण व्यक्ति
 पुत्र पत्नी आदि से स्नेह-रहित
 विषय वस्तुओं में इच्छा-रहित
 और अपने शरीर के प्रति निश्-चिन्त
 आश्रम यानि बिना किसी सहारे
 के ही शोभते अच्छे लगते हैं ॥

तुष्टिः सर्वत्र धीरस्य
 यथा पातित वर्तिनः ।
 स्वच्छन्दम् चरतो देशान्
 यत्र अस्तीति शायिनः ॥

धीरवान् व्यक्ति हर जगह
 तृप्त संतुष्ट रहता है
 जैसा समय स्थान साधन
 हो वैसे ही वर्तता व्यवहार
 करता है । अपनी इच्छा
 से वह दूसरे देश स्थान
 को जाता है और जहाँ
 सुरज तूखन को हो वहाँ सो
 जाता है ॥

पतनु उदेतु वा देहा
न अस्य चिन्ता महात्मनः ।

स्वभाव भूमि विज्ञानि
विस्मृता शेष संसृत ॥

महात्मा को इस बात की
चिन्ता नहीं होती कि उसका
शरीर नाश हो जाये या
जड़ता रहे । वह अपने
स्वभाव रूपी भूमि पर
ही विज्ञान आराम करते
हैं और बाकी संसृत
संसार उन्हें भुला जाता है
याद नहीं आता ॥

अकिंचनः कामचारो
 निर-द्वन्द्वः दिक्क-संशयः ।
 असक्तः सर्वभावेषु
 केवलो रमते बुधः ॥

बुध (बौद्ध रूप होशवान) व्यक्ति
 अपने पास कुछ भी न होते हुए
 कर्म व्यवहार के नियमों से ऊपर
 कुविधाओं - रहित शंका - रहित
 सभी भावनाओं परिसंयतता में
 असक्त (बिना मोह लालच के)
 अकेले रमण (धूमता रहता)
 करता है ॥

निमम शोभते धीरः

सम लोष्ट आश्म कांचनः ।

सुभिन्न हृदय ग्रन्थि-

विनिधूत रजः तमः ॥

जो धीरज वाला व्यक्ति मोह

ममता से रहित है ।

जिसके लिए मिट्टी पत्थर और

सोना एक जैसे हैं ।

जिसके दिल में रुकी सभी

गाँठें खुल गई हैं ।

जिसके उधम आलस धुल गये हैं

वही धैर्यवान व्यक्ति शोभा

पाता है

सर्वत्र अनवधानस्य
 न किंचित् वासना ह्येक ।
 मुक्त-आत्मनो वितृप्तस्य
 तुलना केन जायते ॥

सब जगह आसक्ति राग रहित
 स्थान में कोई इच्छा वासना न •
 रखने वाले हर तरह से संतुष्ट
 तृप्त मुक्त आत्मा वाले व्यक्ति
 की तुलना बराबरी किससे की
 जा सकती है ॥

18.90

जानन्न अपि न जानाति
पश्यन्न अपि न पश्यति ।
ब्रूवन्न अपि न ब्रूते
को अन्यो निर-वासनात् त्रष्टे ॥

वासना इच्छा अकांक्षा रहित
व्यक्ति के अतिरिक्त इलावा
आर कोन हे जो
जानते हय भी नहीं जानता
देखते हय भी नहीं देखता
बोलते हय भी नहीं बोलता ॥

भिक्षु वा भूपति वा अपि
 यो निष्कामः स शोभते ।

भावेण गलिता यस्य
 शोभता अशोभता मतिः ॥

सभी भावनाओं परिरक्षितियों में
 गल गई मित गई है शोभनीय
 या अशोभनीय मति बुद्धि जिसकी
 जो कामना रहित है
 वही शोभा पाता है चाहे वह
 भिखारी भिक्षु हो या
 भूपति राजा हो ॥

क्व स्वाच्छन्दसं क्व संकोचः

क्व वा तत्त्वं विनिश्चयः ।

निरव्याजं अजिवं भूतस्य

चरितार्थस्य योगिनः ॥

* छल कपट रहित सरल सीधे

अपने परम पद को प्राप्त

योगी के लिए

कहाँ स्वाच्छन्दता आजादी

कहाँ संकोच सिकुड़न और

कहाँ परम तत्त्व का निश्चय ॥
(ज्ञानता)

आत्म विज्ञानि तृप्तेन
 निर-आशेन गत-आत्माना ।
 अन्तः यत् अनुभूयेत्
 तत् कथम कस्य कथ्यते ॥

अपने आप में ठहर आराम शांति
 से तृप्त भरे हुये अज्ञान
 आशाओं से रहित
 दूर हो गये हैं दुख जिसके
 उसे अपने भीतर जो अनुभव
 महसूस हो रहा है
 उसे वह कैसे और
 किसका कह बता सकता है ॥

18.94

सुप्तो न अपि न सुप्रुतो च
स्वप्ने अपि श्रयितो न च ।
जागरे अपि न जागर्ति
धीरः तृप्तः पदे पदे ॥

गहरी नींद में भी वह
सोया हुआ नहीं है और
सपने में भी वह सोया
हुआ नहीं होता
जागता हुआ भी वह
जागा हुआ नहीं होता
बालक धैर्यवान् ठहरा हुआ
व्यक्ति कदम कदम पर
तृप्त संतुष्ट भरा-पूरा होता है ॥

ज्ञः सचिन्तो अपि निर-चिन्तः
 स इन्द्रियो अपि निर-इन्द्रियः ।
 स बुद्धिः अपि निर-बुद्धिः
 स अहंकारो अन-अहंकृति ॥

जानी (आत्मा बौद्ध को जानने वाला)
 चिन्तित होते हुये भी चिन्ता रहित है
 इन्द्रियों शरीर संग होते हुये भी
 इन्द्रियों शरीर रहित है
 बुद्धिमान होते हुये भी बुद्धि रहित है
 अहंकारी (कर्म को करता हुआ) भी
 कर्म को नहीं करता है ॥

18.96

न सुखी न च वा दुःखी

न विरक्तो न संगवान् ।

न मुमुक्षुः न वा मुक्तो

न किञ्चित् न च किञ्चन ॥

आत्मा ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति

न सुखी है और न ही दुःखी

न विरक्त (विषयों से भागेन वाला) है

न संगवान (विषयों में रूचि रखने वाला)

न मुमुक्षु (मुक्ति चाहने वाला) है

न मुक्त ही है

न तो वह क्रुद्ध है (गुणों वाला)

न ही क्रुद्ध नहीं है (निर्गुण)

विक्षप अपि न विक्षितः
 समाधौ न समाधिमान ।
 जाड्ये अपि न जडो धन्यः
 प्राड्ये अपि न पांडितः ॥

धन्य है भाग्यशाली है वह
 व्यक्ति जो उलझन में होते
 हुये भी नहीं उलझता जो
 समाधि में होते हुये भी
 समाधिवाला नहीं है जो
 चुप होते हुये भी मूर्ख
 नहीं है और जो बुद्धिमत्ता
 में भी बुद्धिमान नहीं है ॥

18.98

मुक्तो यथा स्थिति स्वस्थः
 कृत कर्षण्य निवृत्तः ।
 सम सर्वत्र वैतृणात्
 न स्मरति अकृतम कृतम ॥

मुक्त व्यक्ति जैसी भी स्थिति
 हो उसमें स्वस्थ खुश रहता है।
 वह किये हुए और करने वाले
 कर्मों से बंधा नहीं रहता।
 इच्छा रहित होने के कारण उसे
 हर स्थान स्थिति एक जैसी लगती
 है और वह किये हुए या
 न किये हुए कर्मों को याद
 नहीं करता ॥

न प्रीयते वन्द्यमानो
 निन्द्यमानो न ~~कुप्यति~~ ^{*न} कुप्यति ।
 न ख उद्विजति मरणे
 जीवने न अभिनन्दति ॥

जीवन मुक्त व्यक्त उनको
 पसंद नहीं करता जो उसकी
 तारीफ़ करते हैं न ही उनसे
 नफरत करता है जो उसकी
 निंदा करते हैं ।

न वह जीवन रहने पर बहुत
 खुश या स्वागत करता है और
 न ही मरण मृत्यु आने पर
 पेशान विचलित होता है ॥

18-100

न धावति जनाकीर्णम्
न अरण्यम् उपशान्तधीः ।
अथ यथा तथा यत्र तत्र
सम एव अवतिष्ठते ॥

शान्त बुद्धि वाला व्यक्ति
न तो लोगों की भीड़
की तरफ भागता है
न ही शकांत के लिए
जंगल की ओर दौड़ता है ।
वह जैसे है जहां भी है वही
सक भाव होकर ही रहता है ॥

अठाहरवा अध्याय समाप्त

उन्नीसवाँ अध्याय

19.1

जनक उवाच

तत्त्व विज्ञान संदेशम्

आदाय हृदय उदरात् ।

नाता विध- परामर्श

शल्य उद्धारः कृतो मया ॥

जनक अष्टावक्र को बताते हैं :

आपसे बोध ज्ञान रूपी

संसी हाथधार पाकर मैं

अपने अंदर चल रहे अनेकों

विचार रूपी तीरों बाणों को

निकाल कर अपना उद्धार

कर लिया है ॥

कव धामः कव च वा कामः
 कव च अर्थः कव विवेकता ।
 कव द्वैतम कव च वा अद्वैतम
 स्व महिम्न स्थितस्य मे ॥

अपनी महिमा में स्थित
 ठहर हुरे मुझ को अब
 कहाँ धाम और कहाँ काम
 की इच्छा है। मेरे लिए
 अब कहाँ अर्थ धन और
 कहाँ विवेक बुद्धि आदि।
 और कहाँ मुझ अब द्वैत
 (भिन्नता) या अद्वैत (एकता) ॥
 अद्वैत

क्व भूतम् भविष्यत् वा
वर्तमानं अपि क्व वा ।

क्व देशः क्व च वा तिथ्यम्
स्व महिम्न स्थितस्य मे ॥

अपनी महिमा मोक्ष में निरंतर
स्थापित ठहर होने के कारण
मेरे लिए समय और स्थान
में भेद नहीं रहा । इसलिए मेरे
लिए कहाँ भूत काल कहाँ भविष्य
और कहाँ वर्तमान काल । और
कहाँ मेरे को स्थान या देश ॥

कव च आत्मा

कव च व अन-आत्मा

कव शुभम कव अशुभम तथा ।

कव चिन्ता कव च वा अचिन्ता

स्व महिम्नि स्थितस्य मे ॥

अपनी आत्मा की महिमा में

ठहर जाने पर मेरे सभी

विभाजन भेद मिट गये हैं ।

इसलिये मेरे लिये कहाँ

आत्मा का होता और न होता

कहाँ कुछ शुभ और कहाँ अशुभ

कहाँ किसी की चिन्ता करना

या न करना ॥

क्व स्वपनः क्व सुषुप्तिः वा
 क्व च जागरणम् तथा ।
 क्व तुरीयम् भयम् वा अपि
 स्व महिम्न स्थितस्य मे ॥

अपनी महिमा वैभव गौरव में
 ठहर हरे मेरे लिए सब अवस्थाएँ
 एक जैसी हो गई हैं इसीलिए
 मुझे कहा जागरण है कहा
 सपना है क्या गहन निद्रा है
 और तुरीय (बोध की अंतिम
 स्थिति) है और कहा किसी का
 डर भय भी है ॥

क्व दूरम् क्व समीपम् वा
बाह्यम् क्व अभ्यन्तरम् क्व वा ।

क्व स्थूलम् क्व च वा सूक्ष्मम्
स्व महिम्नि स्थितस्य मे ॥

अपने आप में ठहर चुके मेरे
लिख सब दूरीया फासल मिल
गये हैं इसलिय मेरे लिख
कहा कुछ दूर है कहा पास है
कहा बाहर है आर कहा अंदर है
कहा कुछ स्थूल (दिखने वाला) आर
कहा कुछ सूक्ष्म (न दिखने वाला) है ॥

क्व मृत्युः जीवितम् वा क्व

क्व लोकाः क्व अस्य क्व लौकिकम् ।

क्व लयः क्व समाधिः वा

स्व महिम्न स्थितस्य मे ॥

मुझ अपनी अनंत निरंतर आत्मा

की महिमा में ठहर चुके के

लिए कहाँ मरना और कहाँ जीना

कहाँ यह संसार और कहाँ ~~हो~~ देव

लोक कहाँ बूँद का सागर में

मिलना और कहाँ समाधि ॥

19-8

अलम त्रिवर्ग कथया

योगस्य कथया अपि अलम ।

अलम विज्ञान कथया

विज्ञानस्य मम आत्मनि ॥

अपनी आत्मा में शान्त होकर

आराम से बैठ चुके (के) लिये

बहुत हो चुकी त्रिवर्ग (धर्म

अर्थ और काम) की कथा

कहानियाँ, बहुत हो गई योग

की कथा अभ्यास और बहुत

हो चुकी परम ज्ञान की बात ॥

उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त

वीसवा अध्याय

20.1

जनक उवाच

क्व भूतानि क्व देहा वा

क्व इन्द्रियाणि क्व मनः वा ।

क्व शून्यम् क्व च मेराश्रयम्

मम स्वरूपे निरजेन ॥

मेरे शुद्ध साफ वैदाग रूप में

कहाँ पंच भूत हवा पानी आदि

कहाँ मेरा शरीर कहाँ शरीरक अंग

और कहाँ मेरा मन ही है ।

कहाँ मुझमें शून्यता खालीपन है

और कहाँ मेरी आधार दीनता ॥

क्व शास्त्रम् क्व आत्म विज्ञानम्
 क्व वा निर-विषयम् मनः ।
 क्व तृप्ति तृप्तिः क्व वितृष्णात्वम्
 भगवद्भक्तस्य मे सदा ॥

क्योंकि मेरे द्वन्द्व दुर्विचार
 उलझते शकायें शकायें
 सब विद्या समाप्त हो गई है
 इसलिय मेरे लिय अब
 कहाँ शास्त्र कहाँ आत्मा का ज्ञान
 कहाँ विषय विचार रहित मन
 कहाँ तृप्ति कहाँ तृष्णा का अभाव ॥

क्व विद्या क्व च अविद्या

क्व अहम क्व इदम मम क्व वा ।

क्व बन्धः क्व च वा मोक्ष

स्व रूपस्य क्व रूपिता ॥

निर-आकार

अपन स्वरूप मे ठहर हरे

मुझमे कहा कोई रूप है

कहा विद्या और कहा अविद्या

कहा मे कहा यह कहा मेरा

कहा बन्धन और कहा मुक्ति है ॥

20.4

क्व प्रारब्धानि कर्माणि
जीवन मुक्तिः अपि क्व वा ।
क्व तत विदेह कैवल्यम्
निर-विशेषस्य सर्वदा ॥

ये जो सब कुछ हटने मिलने
के बाद भी शेष रह जाता है
उसके लिए कहाँ पूर्व पिछले
कर्मा का करना या भोगना है
कहाँ जीवन से मुक्ति भी है और
कहाँ वह देह-रीह देह से मुक्ति है ॥

क्व कर्त्ता क्व च वा भोक्ता

निष्-क्रियम् स्फुरणम् क्व वा ।

क्व अपरोक्षम् फलम् वा क्व

निःस्वभावस्य मे सदा ॥

सदा स्वभाव-रहित गुण-रहित

मझ में कहा कर्त्ता (कर्म करने वाला)

ह और कहा भोक्ता (भोगने वाला)

कहा क्रिया कर्म रहित स्फुरण॥ ह और

कहा ज्ञान और कहा उसका फल ॥

20.6

कव लोकः कव मुमुक्षुः वा
कव योगी ज्ञानवान् कव वा ।
कव व्यक्तः कव च वा मुक्तः
स्वस्वरूपे अहम् अक्षये ॥

मुझ आत्मा से एक हूँ अक्षय
अपने अक्षय स्वरूप में ठहर
हूँ मैं कहाँ यह संसारी
लोग हैं कहाँ मुमुक्षु (मुक्ति इच्छुक) हैं
कहाँ योगी कहाँ ज्ञानवान् हैं
कहाँ व्यक्त (बद्ध हूँ) और
कहाँ मुक्त हूँ ॥

क्व सृष्टिः क्व च संहारः

क्व साध्यम् क्व च साधनम् ।

क्व साधकः क्व सिद्धिः वा

स्व-स्वरूपे अहम् अक्षये ॥

~~मुझ अक्षय~~ अपन अक्षय स्वरूप में

ठहरे हुए मुझ में कहाँ

संसार की सृष्टि रचना और

कहाँ इसका संहार विनाश है

कहाँ कोई साध्य लक्ष्य और

कहाँ उसे पान की साधना यत्न

कहाँ साधक यत्न करने वाला और

कहाँ साध्य लक्ष्य की प्राप्ति सिद्धि ॥

20.8

क्व प्रमाता प्रमाणम् वा
 क्व प्रमेयम् क्व च प्रमा ।
 क्व किञ्चित् क्व न किञ्चित् वा
 सर्वदा विमलस्य मे ॥

मुझ सदा विमल उपाधि-रहित का
 कहाँ काँइ प्रमाण है या प्रमाता है
 कहाँ काँइ प्रमेय है और प्रमा है ।
 मुझ में कहाँ कुछ है और
 कहाँ कुछ नहीं है ॥ अर्थात्
 मुझ में या मैं सारी सृष्टि
 के साथ एक हो गया हूँ ॥

२९२

क्व विक्षेपः क्व च शकाग्रयन

क्व निर-बोधः क्व मूढ़ता ।

क्व हर्षः क्व विषादो वा

सर्वदा निर-क्रियस्य मे ॥

मेरा जो सदा क्रिया-रहित अकृता का

स्वरूप है उसमें कहाँ

विक्षेप उलझन है कहाँ

शकाग्रता है ।

कहाँ बोध का अभाव है

कहाँ मूढ़ता मूर्खता है

कहाँ हर्ष स्वर्षा है और

कहाँ विषाद दुःख है ॥

20.10

क्व च ख व्यवहारो वा

क्व च सा परम-अर्थता ।

क्व सुखम् क्व च वा दुःखम्

निःविमलशय मे सदा ॥

मुझ विचार विमल रहित

आत्म रूप में

कहा यह व्यवहार आदि है और

कहा वह परम अर्थता है

कहा सुख है और

कहा दुःख है ॥

क्व माया क्व च संसारः

क्व प्रीतिः विरतिः क्व वा ।

क्व जीवः क्व च तत् ब्रह्म

सर्वदा विमलस्य मे ॥

मुझ सदा ही निर्मल साफ

आत्म रूप के लिए

कहाँ माया और कहाँ संसार

कहाँ प्रीति प्रेम और

कहाँ धृणा विरति आदि है

मेरे लिए कहाँ जीव संसारी

और कहाँ वह ब्रह्म परमात्मा ॥

२०.१२

क्व प्रवृत्तिः निवृत्तिः वा

क्व मुक्तिः क्व च बन्धनम् ।

कूटस्थ- निर्विभागस्य स्वस्थस्य

मम सर्वदा ॥

मुझ सदा स्थायी स्वस्थ

अविभाज्य (जैसे तौड़ा या बांटा

न जा सके) के लिए अब

कहाँ प्रवृत्ति यानि लगाव

कहाँ निवृत्ति यानि मुक्ति छुटकारा

कहाँ मोक्ष और कहीं बन्धन ॥

क्व उपदेशः क्व वा शास्त्रम्
 क्व शिष्यः क्व च वा गुरुः ।
 क्व च अस्ति पुरुषार्थो वा
 निर-उपाधेः शिवस्य मे ॥

मुझ उपाधि-रहित गुण-रहित
 कल्याण रूप आत्मा मे
 कहाँ उपदेश शिष्या
 कहाँ शास्त्र किताबें
 कहाँ शिष्य विद्यार्थी और
 कहाँ गुरु ही है । और
 कहाँ अब मुझमें पुरुषार्थ यानि
 मुक्ति ज्ञान आदि ही है ॥

20.14

क्व च अस्ति

क्व च न अस्ति

क्व अस्ति च शक्यम्

क्व च द्वयम् ।

बहुता अत्र किम् उत्पन्न

किंचित न उत्पद्यते नम ॥

कहा कुछ है और

कहा कुछ नहीं है

कहा शक्य है और

कहा दूसरा है ।

यहां ज्यादा कहने से क्या होगा

मेरे अंदर से कुछ नहीं उठ रहा ॥

बीसवाँ अध्याय समाप्त

धन्यवाद

मैं आपका धन्यवाद शुक्रिया
करना चाहता हूँ कि आपन
यह पुस्तक पूरी पढ़ी है और
पढ़ते पढ़ते इस आखरी अंतिम
पन्ने पर आ पहुँचे हैं।
मुझे उम्मीद है इस पुस्तक को पूरी
पढ़ने के बाद अपने और सभार
के प्रति आपकी समझ जरूर बढ़ेगी।
यह हो सकता है कि एक बार
पढ़ने पर इसके सही अर्थ न
समझ आयें। मगर मेरी आपसे
प्रार्थना है विनती है कि आप इसे
बार बार पढ़ें। जितनी बार आप
पढ़ेंगे उतनी ही बार आपकी समझ
बढ़ेगी।

जिनोद कद

अष्टावक्र जनक सेवाद

साथियो यदि इस पुस्तक के
बारे में आपका कोई भी

प्रश्न सुझाव शिकायत आदि
हो तो आप मुझे मेरे

मोबाइल नम्बर 88604 10233

या मेरी ईमेल पते

Kad. Vinod @ gmail. com

पर संपर्क कर सकते हैं।

धन्यवाद

विनोद कट्टे